आर.एन.आई. नं. 3653/57

डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-018/2006-08

हिन्दी मासिक

जिनवाणी

नमस्कार महामंत्र

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

एसो पंच णमोक्कारो,

सव्व-पावप्पणासणो,

मंगलाणं च सव्वेसिं,

पढमं हवइ मंगलं ।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर

वर्ष : 63 मूल्य 10 रु. अंक : 7

15 जुलाई, 2006 आषाढ़, 2063

अनगिनत व्हरायटीज्,
शुध्दता और
वाजिब हिसाब का
सुनहरा संगम

त्यौहार, शुभ प्रसंग
के आनंद को
द्विगुणीत करनेवाले
मंगल आभूषण

भारतवर्ष का स्वर्णतीर्थ

३५ वर्षोंसे तत्पर
एवं विनम्र सेवा
ग्राहकों की जिज्ञासा को
पूरा समाधान

ॲन्टीक, ऑक्साइड
जी बी, कास्टींग, कुंदन
पोलकी इ. गहनों के
अनेकों प्रकार

कॅरेटोमीटर की उपलब्धता

जलगावमें विशेष निवास व्यवस्था

औरंगाबाद :
आकाशवाणी चौक,
जालना रोड,
☎ ०२४०-३०९७९७९

रतनलाल सी. बाफना ज्वेलर्स

सोना • चांदी • हिरा • मोती

जलगांव :
नयनतारा,
सुभाष चौक
☎ ०२५७-२२२५९०३

जिनवाणी हिन्दी-मासिक

**मंगल-मूल, धर्म की जननी शाश्वत सुखदा कल्याणी।
द्रोह-मोह-छल-मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी'।।**

卐 संरक्षक

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राज.), फोन नं. 2636763

卐 संस्थापक

श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

卐 प्रकाशक

प्रेमचन्द जैन, मंत्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नम्बर 182-183 के ऊपर, बापू बाज़ार,
जयपुर-302003 (राज.),
फोन नं. 0141-2575997, फैक्स-0141-2570753

卐 सम्पादक

डॉ. धर्मचन्द जैन, एम.ए., पी-एच.डी.
3 K 24-25, कुड़ी भगतासनी हाउसिंग बोर्ड
जोधपुर- 342005, फोन नं. 0291-2730081

卐 सह-सम्पादक

नौरतन मेहता, जोधपुर

卐 भारत सरकार द्वारा प्रदत्त

रजिस्ट्रेशन नं. 3653/57
डाक पंजीयन सं. RJ/JPC/M-018/2006-08

卐 सदस्यता

स्तम्भ सदस्यता-रू.11000/- संरक्षक सदस्यता-रू.5000/-
वार्षिक सदस्यता- रू. 50/- त्रिवर्षीय सदस्यता- रू.120/-
आजीवन सदस्यता देश में - रू. 500/-
विदेश में- 100$ (डॉलर)
इस अंक का मूल्य रू. 10/-

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

नत्थि नूणं परे लोए,
इड्ढी वावि तवस्सिणो।
अदुवा वंचिओमि त्ति,
इइ भिक्खू न चिंतए।।

- उत्तराध्ययन सूत्र २.४४

**निश्चित ही परलोक नहीं,
तपसी जन की भी ऋद्धि नहीं।
अथवा मैं ठगा गया जग में,
यो मुनि शंका मन धरे नहीं।।४४।।**

**जुलाई २००६
वीर निर्वाण संवत् २५३२
आषाढ़ २०६३**

वर्ष ६३ अंक ०७

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिण्टिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर, फोन: 2562929

ड्राफ्ट 'जिनवाणी' जयपुर के नाम बनवाकर प्रकाशक के उपर्युक्त पते पर प्रेषित किया जा सकता है।

नोट : यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो।

विषयानुक्रम

अमृत-चिन्तन-	आगम-वाणी	-संकलित	६
	विचार-वारिधि	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.	७
प्रवचन-	शान्ति, सुख और आनन्द के लिए निभने-निभाने की कला चाहिए	-उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा.	८
श्रमणाचार-	श्रमण का आहार	-श्री उदयमुनि जी म.सा.	१४
	आज्ञा बाहर एवं एकलविहारी सन्त	-प्रो. चाँदमल कर्णावट	३६
शोधालेख-	ध्यानशतक : एक परिचय	-डॉ. सागरमल जैन	२२
	जैन पुराणों में सामाजिक सौहार्द	-कु. अंजना बैराठी	३९
धर्म एवं व्यवहार-	आधुनिक युग और जैन धर्म	-मीनाक्षी जैन	७२
	विवेक	-श्री श्रीकृष्णमल लोढ़ा	७६
धारावाहिक-	जम्बूकुमार (३०)	-जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म.सा.	४३
तत्त्वज्ञान-	दशवैकालिक सूत्र का जानें हम मर्म (१०)	- संकलित	४८
	आओ मिलकर ज्ञान बढ़ाएँ (३२)	- श्री धर्मचन्द जैन	५८
युवा-स्तम्भ-	महावीर का श्रावक धर्म बनाम...	-श्री पदमचन्द गाँधी	५१
उपन्यास-	सिद्धगिरि का यात्री (१)	-उपाध्याय श्री केवलमुनिजी म.सा.	५५
नारी-स्तम्भ-	प्रसन्नता का राजमार्ग : सकारात्मक सोच	-श्री भागचन्द छाजेड़	६३
बाल-स्तम्भ-	धर्म की राह पर	-डॉ. राजेन्द्र मुनि	६६
प्रेरक प्रसंग-	घाती-अघाती कर्मों के विपाक	-श्री जशकरण डागा	६२
	भयानक मनोवृत्ति	-आचार्य श्री विजयरत्नसुन्दरसूरि जी	७१
विचार-	प्रवचन-कण	-तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा.	१३
	सदा याद रखें	-प्राणिमित्र नितेश नागोता 'जैन'	२१
	अच्छी चिकित्सा की आवश्यकता	-श्री चंचलमल चोरडिया	५४
	सामायिक : एक समाधि साधना	-डॉ. लक्ष्मीचन्द जैन	७८
लघु लेख-	साधना से नवनिर्माण	-श्री त्रिलोकचन्द जैन	९९
कविता/गीत-	चलो सफर यह जिन्दगी का	-श्री मोहन कोठारी 'विनर'	४७
	सभी बड़ों से ले आशीष	-डॉ. दिलीप धींग	५०
	स्वाध्याय कुण्डलियाँ	-श्री अनराज बोथरा	५७
	कहाँ नहीं हैं महावीर	- श्री चन्द्रेश भंडारी	६१
सम्पादकीय -	डॉ. धर्मचन्द जैन		३
युवक परिषद्-	आओ स्वाध्याय करें त्रैमासिक प्रतियोगिता (११)		७९
स्वाध्यायी परिचय-	श्री बाबूलाल जैन-गोपालगढ़	-श्रीमती मोहनकौर जैन	८२
नूतन साहित्य-	डॉ. धर्मचन्द जैन		८४
समाचार-विविधा-	समाचार-संकलन		८७
	साभार-प्राप्ति-स्वीकार		१००

तपोमय श्रमण जीवन

❖ डॉ. धर्मचन्द जैन

श्रमण-श्रमणी का जीवन अहिंसा, संयम एवं तपरूप धर्म का अनूठा संगम होता है। उन्हें परीषहों एवं उपसर्गों में भी अविचलित रहने का अभ्यास करना होता है। श्रमण-श्रमणियों के एक स्थान पर रहने एवं विचरण-विहार के भी विशेष नियम होते हैं। वे गृहस्थों को जीवन में व्रती एवं निष्कलुष बनने की प्रेरणा करते हैं। गृहस्थ भी उन्हें 'तिक्खुत्तो' के पाठ से 'मत्थएण वंदामि' शब्दों से अथवा 'खमासमणो' के पाठ से वन्दन करते हैं। साधु-साध्वी वेश के कारण नहीं, अपितु उनके पंच महाव्रतों, पाँच समितियों, तीन गुप्तियों एवं ज्ञानपूर्वक समत्व की साधना के कारण वन्दनीय और पूजनीय होते हैं। बाह्य वेशभूषा तो प्रतीक है, किन्तु वैराग्य, आत्मार्थिपन,पारस्परिक सहयोग एवं निभने-निभाने की कला जब तक श्रमण-श्रमणी जीवन में नहीं होगी तब तक वह जीवन गृहस्थों के लिए प्रेरणाप्रद नहीं बनता।

साधु-साध्वियों को जीवन में तपना होता है। उन्हें आचार्यों, गुरुवर्यों, गुरुणियों या गच्छप्रमुखों के वचनों को हितकारी मानकर स्वीकार करना होता है। आज्ञा देने वाले गुरुवर्यों की भी भावना में हित का भाव निहित होना चाहिए। संयम का पालन प्रेमपूर्वक ही हो सकता है, जबरदस्ती से संयम का पालन नहीं कराया जा सकता। हाँ, संयम एवं अनुशासन में रहने की बात को बार-बार समझाया जा सकता है, प्रेमपूर्वक समझाया जा सकता है। यदि वह समझाने पर भी न माने तो उस साधु या साध्वी को संघ से निष्कासित कर दिया जाता है।

साधु-साध्वी का जीवन अंगीकार करना आसान है, किन्तु उसका निर्वाह करना सचमुच कठिन है। साधु-साध्वियों को गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओं द्वारा वन्दनपूर्वक आदर दिया जाता है, उनके भिक्षा हेतु घर पधारने पर प्रमोद का अनुभव कर यथेच्छ वस्तु बहरायी जाती है। जो साधु-साध्वी इसे पाकर अपने को उत्कृष्ट समझने लगते हैं वे संयम की राह से भटक जाते हैं, फिर उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियाँ खारी लगती हैं। कहीं उनका आदर न हो, अपमानकारी शब्दों का प्रयोग हो जाए, तो उन्हें नहीं सुहाता। वे अपने को पूर्णज्ञानी मानने लगते हैं।अपने गच्छ या संघाड़े में उन्हें कोई सीख दी जाए तो उनका मन उद्वेलित हो उठता है। साधु-साध्वी को

अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में समता की साधना करनी होती है। जो इसमें खरे उतरते हैं, अपने मन को आगम-वाक्यों से एवं गुरु-वचनों से समझाने में सक्षम होते हैं वे अपने आपको संयम की उच्चता में स्थिर कर लेते हैं। कई साधु-साध्वी उपदेश भी अच्छा दे लेते हैं, किन्तु भीतर में कषायों की अग्नि शान्त नहीं कर पाते। ईर्ष्या-द्वेष, मानापमान की अग्नि में जलने लगते हैं। अपनी यश-कीर्ति के लिए गृहस्थों को वे अपने मनचाहे कार्यक्रमों का आयोजन करने के लिए हाँकते रहते हैं। इससे उनकी प्रसिद्धि तो होती है, किन्तु आत्म-साधना से वे दूर हो जाते हैं। गृहस्थ यदि उनके अनुकूल नहीं चलते हैं तो वे उनमें अनिष्टादि का भय उत्पन्न कर अपना कार्य सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। वे जोड़-तोड़ का मार्ग अपनाने लगते हैं। इसका तात्पर्य है कि वे साधुता के स्वरूप से भ्रष्ट हो जाते हैं। आज ऐसे भी साधु-साध्वी हैं जो छद्मरूप में धन-संग्रह करते रहते हैं, किन्तु इसे अकिंचनत्तायुक्त साधु-जीवन के लिए उचित नहीं कहा जा सकता।

श्रमण-श्रमणी जीवन आचार के विविध नियमों से संचालित होता है, उन नियमों के पालन के साथ महत्त्वपूर्ण हैं मन की सरलता, सहिष्णुता, क्षमाशीलता। जिस गच्छ में वे रहते हैं उस गच्छ के सदस्यों के साथ परस्पर प्रेम एवं मैत्री का भाव होना चाहिए। यह तभी होगा जब छोटे सन्त-सती सेवा में सदैव तत्पर रहेंगे तथा बड़े भी उनकी सुविधा का ध्यान रखेंगे। बड़ों का यह दायित्व है कि वे अपने गच्छ के साधुओं या साध्वियों में भेदभाव का व्यवहार न करें, सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार रखें। साधु-साध्वियों का अधिकांश समय स्वाध्याय, ध्यान एवं ज्ञान-चर्चा में व्यतीत होना चाहिए। जो साधु-साध्वी गृहस्थों के जीवन में रुचि लेने लगते हैं, उनसे अकरणीय बातें करने लगते हैं, जो साधु-साध्वी अपने विपरीत लिंगी युवा श्रावक-श्राविकाओं से घिरे रहते हैं वहाँ विकार का प्रवेश प्रायः हो ही जाता है। उनके मन में फिर साधुत्व को छोड़कर गृहस्थ बनने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

ऐसे श्रमण स्वयं श्रमणवेश का त्याग कर गृहस्थ वेश धारण कर लेते हैं। किन्तु जैन समाज में फिर उनकी प्रतिष्ठा नहीं रहती। क्योंकि जो समाज पहले जिन्हें पूज्य मानकर वन्दना करता रहा है, वे ही जब गृहस्थ बन जायें तो समाज की श्रद्धा को धक्का पहुँचता है, फिर समाज उन्हें देखना भी पसंद नहीं करता। बौद्धों में तो ऐसी परम्परा भी है कि कोई भी व्यक्ति पाँच-दस वर्ष तक भिक्षु रहने का अभ्यास कर सकता है तथा फिर उसे छोड़ सकता है। वहाँ यह आम बात है, किन्तु जैन

समाज में ऐसा करना अमान्य है।

कभी श्रमणाचार के पालन में शिथिलता के कारण आचार्य द्वारा प्रायश्चित्त दिया जाता है। यदि साधु-साध्वी उस प्रायश्चित्त का पालन न करें तो आचार्य को उस साधु या साध्वी को संघ से बहिष्कृत करने का अधिकार होता हैं। ऐसी स्थिति में वह साधु (प्रायः साध्वी नहीं) एकाकी विचरण करने लगता है। आज्ञा से बाहर किए गए ऐसे एकाकी साधुओं का आगमिक दृष्टि से संघ में कोई स्थान नहीं रहता। अबहिष्कृत साधुओं के भी आगमों में एकाकी विचरण पर बहुत से प्रतिबंध हैं, तब बहिष्कृत साधुओं का तो कहना ही क्या? बहुश्रुत साधुओं के भी एकाकी रहने पर व्यवहार सूत्र में निषेध है, यथा-

नो कप्पइ बहुस्सुयस्स बब्भागस्स एगणियस्स।
भिक्खुस्स वत्थए किमंग पुण अप्पसुयस्स अप्पागमस्स॥

-व्यवहार सूत्र ६.१४

बहुश्रुत और बहु आगमज्ञ भिक्षु को भी अकेले रहना नहीं कल्पता है तो अल्पश्रुत एवं अल्प आगमज्ञ भिक्षु को कैसे कल्प सकता है? अर्थात् नहीं।

आचारांग सूत्र में कहा है कि जो भिक्षु अंपरिपक्व अवस्था में है उसका अकेले ग्रामानुग्राम विहार करना दुःखप्रद और पतन का कारण होता है-

गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स दुज्जातं दुप्परक्कंतं भवति अवियत्तस्स भिक्खुणो।

प्रश्न यह होता है कि धर्मसंघ से आचार्य के द्वारा बहिष्कृत मुनियों के साथ श्रावकों का किस प्रकार का व्यवहार हो? यदि बहिष्कृत मुनि को संघ में सम्मिलित मुनि की भाँति ही आदर सम्मान देकर पूज्य माना जाता है तो इससे आचार्य के आदेश की अवहेलना होती है एवं धर्माचरण के श्रेष्ठ स्वरूप का अवमूल्यन होता है। साथ ही ऐसे सदोष एकाकी मुनियों को प्रोत्साहन मिलता है। यह व्यवहार सत्य है कि संघ में रहकर जो आचार पालन हो सकता है वह एकाकी रहने पर संभव नहीं है। इसलिए श्रावकों का दायित्व होता है कि वे ऐसे संतों की प्रवृत्ति को बढ़ावा न दें। मानवता की बात अलग है, किन्तु पूज्यता की बात उससे भिन्न है। धर्मसंघ से निष्कासित एकाकी संतों के साथ मानवीय व्यवहार हो सकता है, किन्तु श्रद्धा एवं पूज्यता का व्यवहार उचित नहीं कहा जा सकता। हाँ, उनके प्रति द्वेषभाव भी उचित नहीं। कई बार लोग उनसे घृणा एवं द्वेष करने लगते हैं, किन्तु एक धार्मिक पुरुष-स्त्री को ऐसा करना शोभा नहीं देता। उनसे अपराध एवं दोष अवश्य हुआ है, क्निन्तु इससे वे द्वेष्य नहीं होते।

शेष भाग पृष्ठ संख्या ३८ पर...

आगम-वाणी

चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा- अम्मापितिसमाणे, भातिसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्तिसमाणे। *-स्थानांग सूत्र, स्थान ४, उद्देशक ३, गाथा ४३०*

श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे- १. माता-पिता के समान, २. भाई के समान, ३. मित्र के समान, ४. सपत्नी के समान।

विवेचन- जिन श्रमणोपासकों में श्रमणों के प्रति अत्यन्त स्नेह, वात्सल्य और श्रद्धा का भाव निरन्तर प्रवाहमान रहता है उनकी तुलना माता-पिता से की गई है। जिन श्रमणोपासकों में श्रमणों के प्रति यथावसर वात्सल्य और यथावसर उग्रभाव दोनों होते हैं, उनकी तुलना भाई से की गई है। जिन श्रमणोपासकों में श्रमणों के प्रति कारणवश प्रीति और कारण विशेष से अप्रीति दोनों पाई जाती है, उनकी तुलना मित्र से की गई है। ऐसे श्रमणोपासक अनुकूलता के समय प्रीति रखते हैं और प्रतिकूलता के समय अप्रीति या उपेक्षा करने लगते हैं। जो केवल नाम से श्रमणोपासक कहलाते हैं, किन्तु जिनके भीतर श्रमणों के प्रति वात्सल्य या भक्तिभाव नहीं होता, प्रत्युत जो छिद्रान्वेषण ही करते रहते हैं, उनकी तुलना सपत्नी(सौत) से की गई है।

चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा-अद्दागसमाणे, पडागसमाणे, खाणुसमाणे, खरकंटयसमाणे।।*-स्थानांग सूत्र, स्थान ४, उद्देशक ३, गाथा ४३१*

श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे- १. आदर्श समान, २. पताकासमान, ३. स्थाणुसमान ४. खरकण्टकसमान।

विवेचन- जो श्रमणोपासक आदर्श (दर्पण) के समान निर्मलचित्त होता है, वह साधुजनों के द्वारा प्रतिपादित उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्ग के आपेक्षिक कथन को यथावत् स्वीकार करता है, वह आदर्श के समान कहा गया है। जो श्रमणोपासक पताका (ध्वजा) के समान अस्थिरचित्त होता है, वह विभिन्न प्रकार की देशना रूप वायु से प्रेरित होने के कारण किसी एक निश्चित तत्त्व पर स्थिर नहीं रह पाता, उसे पताका के समान कहा गया है। जो श्रमणोपासक स्थाणु (सूखे वृक्ष के ठूंठ) के समान नमन स्वभाव से रहित होता है, अपने कदाग्रह को समझाये जाने पर भी नहीं छोड़ता है, वह स्थाणु के समान कहा गया है। जो श्रमणोपासक महाकदाग्राही होता है, उसको दूर करने के लिए यदि कोई संत पुरुष प्रयत्न करता है तो वह तीक्ष्ण दुर्वचन रूप कण्टकों से उसे भी विद्ध कर देता है, उसे खरकण्टक समान कहा गया है। इस प्रकार चित्त की निर्मलता, अस्थिरता, अनम्रता और कलुषता की अपेक्षा चार भेद कहे गये हैं।

विचार-वारिधि

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

- सुखी बनने का एक ही उपाय है- कामनाओं को जीतना। अगर कामनाओं को जीत लिया है तो समझ लें कि आपने समस्त दुःखों पर विजय प्राप्त कर ली है।

- जब तक मन में दुर्बलता रहती है तभी तक मनुष्य सांसारिक पदार्थों की ओर खिंचता है। दुर्बलता दूर होते ही खिंचाव भी दूर हो जाता है और चंचलता भी दूर हो जाती है।

- मानसिक चंचलता के प्रधान दो कारण हैं- लोभ और अज्ञान। बाह्य पदार्थों के प्रति अनुराग की जो व्यक्त तथा अव्यक्त वृत्ति है, वही लोभ कहलाती है। यह वृत्ति चित्त को निश्चल नहीं होने देती। दूसरा कारण अज्ञान है। आज देवी-देवताओं की जो उपासना चल रही है, उसका मूल कारण अज्ञान है, नासमझी है।

- मिथ्यात्व का पोषण समस्त पापों में बड़ा पाप है और समस्त पापों का जनक है।

- अगर बच्चे-बच्चियों को सिखाना है कि वे अपनी माता की सेवा करें तो बड़ों को पहले स्वयं अपने घर में जो बड़ी-बूढ़ी माताएँ हैं, उनका सम्मान, आज्ञा-पालन और विनय करना चाहिए। उनके प्रति ऐसा नम्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए कि उन्हें संतोष उपजे। इस सद्व्यवहार को देख-देख कर ही आगामी पीढ़ी इसी प्रकार के संस्कार प्राप्त कर लेगी और गृहस्थी नरक के बदले स्वर्ग के समान बन जाएगी।

- जहाँ मोह का आधिक्य होगा वहाँ शोक का भी अतिरेक होगा और जहाँ भोग की प्रबलता होगी, वहाँ रोग का साम्राज्य होगा।

- जिस प्रकार दर्शनशक्ति से शून्य आँखें सुन्दर होकर भी व्यर्थ हैं, ठीक उसी प्रकार धर्म के बिना कुबेर का भण्डार, भीम का बल, विज्ञानियों का विज्ञान, काम का सौन्दर्य, वसुन्धरा का धन व रत्नाकर का रत्न सब व्यर्थ हैं।

-'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' ग्रन्थ से साभार

शांति, सुख और आनन्द के लिए निभने-निभाने की कला चाहिए

उपाध्याय पं. रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा.

परमश्रद्धेय उपाध्याय पं. रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. ने २ जून २००६ को वर्द्धमान भवन, पावटा में निभने-निभाने की कला का हार्द समझाते हुए शांति, सुख और आनन्द के लिए इसे आवश्यक बताया। प्रवचन का आशुलेखन श्री महिपाल चौधरी ने किया एवं सम्पादन संघ कार्यालय प्रभारी तथा जिनवाणी के सह सम्पादक श्री नौरतन मेहता ने किया है। -सम्पादक

शास्त्र का एक वाक्य है- **''उवसमसारं खलु सामण्णं''**। श्रमण धर्म का सार है- कषायों की उपशान्तता। **''सन्ति सन्तिकरे लोए''** अर्थात् जो जगत् में शांति का आचरण करता है, वहीं पर शांति है। शांति सब जगह जरूरी लगती है। आप चाहे जहाँ चले जायें, शांति है तब तक ठीक है और ज्यों ही शांति में कहीं से कोई बाधा आई नहीं कि वहाँ रहने का मन नहीं होता। घर में शांति चाहिए। घर के मुखिया की प्रकृति का असर परिवार के लोगों पर पड़ता है। आप चाहें घर पर हों, दुकान पर हों, दफ्तर में हों, कहीं पर भी क्यों न हों, बड़ों का असर छोटों पर जरूर होता है। बड़े छोटों को निभाते आए हैं, आज भी निभाते हैं।

छोटों को निभना और बड़ों को निभाना आ जाय तो अशांति का कोई कारण नहीं रहता। 'निभना' और 'निभाना' ये दो शब्द कहने के लिए ही नहीं हैं बल्कि ये शब्द जीवन में रमाने के लिए हैं। अगर निभना और निभाना आ गया तो वहाँ 'सोने में सुहागा' कहावत चरितार्थ हो जाती है। निभने और निभाने में यदि एक भी गुण आ जाय तो काम चल सकता है। निभना-निभाना दोनों गुण आ जायें तो किसी को कहीं पर अशांति नहीं हो सकती।

अभी छोटों से निभने की बात कम ध्यान में आती है, इसलिए बड़ों

को निभाने का पूरा खयाल रखना चाहिये। एक सेठ मुनीम और नौकरों को निभाता है। अगर सेठ नहीं निभायेगा तो मुनीम दूसरे दिन चाबियाँ सेठ को पकड़ा कर चलता बनेगा। एक ऑफिसर है तो उसे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को निभाना पड़ता है। डॉक्टर है तो उसे कम्पाउण्डर-नर्स और छोटे डॉक्टरों को निभाना पड़ता है। आप चाहे जहाँ देख लीजिये, छोटे बड़ों की बातों पर तभी अमल करेंगे जब बड़े निभाने की कला जान लेंगे।

संघ हो या समाज, सब जगह निभना-निभाना आना चाहिये। संघ का नायक चतुर्विध संघ की सारणा-वारणा-धारणा करता है। वह सबको निभाने की कला कर्त्तव्य समझकर और संघहित को सर्वोपरि मानकर पूरी करता है तभी संघ में शांति बनी रहती है। संघनायक सबके हित का चिन्तन करता है।

एक गाँव में गुरु-चेला रहते थे। गुरु का बुढ़ापा था, इसलिए चेला सेवा करता था। सेवा करने वाले से कभी-कभी गलती हो सकती है, कभी लापरवाही भी रह सकती है। गुरु अपने शिष्य को योग्य बनाने का प्रयास करता है तो उसे कभी-कभी अनुशासन भी करना पड़ता है। अनुशासन की सब जगह जरूरत रहती है। आपका व्यवहार क्षेत्र हो या हमारा अध्यात्मिक क्षेत्र, अनुशासन सब जगह चाहिये। घर हो या समाज अथवा राष्ट्र ही क्यों न हो अनुशासन के बिना संघ, समाज और राष्ट्र की गाड़ी सुव्यवस्थित नहीं चल सकती। घर है तो घर में सासू को बहू से कहना पड़ता है। बाप बेटे को कहता है। गुरु भी शिष्य को समय-समय पर हित की भावना से कहता है, कभी उपालम्भ देना हो तो भी देता है। शिष्य यदि विनयवान है तो गुरु के कहे वचन स्वीकार करके धारणा करता है, हित की बात सहज होकर मानता है और गुरु के अनुशासन में रहकर जीवन-निर्माण करता है। शिष्य सदा एक ही बात सोचता है कि गुरु मेरे हित के लिए कह रहे हैं। गुरु मेरे जीवन-निर्माता हैं और अगर शिष्य विनयवान नहीं है तो गुरु की कही बात को उल्टे रूप में लेता है। यह बात साधु-जीवन की है तो गृहस्थ में भी है। आपके घरों में बच्चों को रखना आसान काम नहीं है। बच्चे हैं तो खाने-पीने-खेलने के लिए झगड़ सकते हैं। बड़े-बुजुर्ग कभी कहते भी हैं तो उनका कहा असरकारक नहीं होता। कुछ कठोर अनुशासन किया जाता है तो बच्चे रूठने के साथ घर से पलायन तक कर जाते हैं। कभी-कभी बच्चे गलत कदम भी उठा लेते हैं। बड़ों के

अनुशासन से नाराज होकर घर से भाग जाने वाले बच्चों के लिए आपने अखबारों में गुमशुदा की रिपोर्टें देखी होंगी। कभी बच्चा अपने दोस्तों के बीच बैठा है वहाँ यदि माता-पिता कुछ कह दें तो घर आकर बच्चा लड़ने पर उतारु हो जाता है कि आपको मेरे दोस्तों के बीच कहने की क्या जरूरत थी? आप यह बात मुझे घर पर भी कह सकते थे। दोस्तों के बीच में मेरी जो पोजीशन थी वह आपने मिट्टी में मिला दी। आज बच्चा एक की चार सुनाता है।

गुरु अपने शिष्य का जीवन बनाने के लिए समय-समय पर कहता है तो कभी कठोर अनुशासन भी करता है। चेला समय पर काम नहीं करे तो टोकना भी पड़ता है। गोचरी के लिए जाये और जरूरत से ज्यादा देर लगाये तो कभी उपालम्भ भी देना पड़ता है। गुरु अपने चेले को टोकता है तो चेला सोचता है कि गुरु मुझे नाहक तंग करते हैं। वह गुरु के अनुशासन में रहने के बजाय सामने बोलने को तैयार हो जाता है। इधर चेला गुरु के अनुशासन में घुटन महसूस करने लगता है तो उधर गुरु को भी रोज-रोज की टोका-टाकी अच्छी नहीं लगती। वह भी चेले से तंग आ जाता है। उस गाँव के गुरु-चेले में भी ऐसा ही हुआ। गुरु चेले से नाराज, चेला गुरु से। चेला सोचने लगा- यहाँ रहने के बजाय तो घर चले जाना ही ठीक है।

सुबह उठने के साथ चेला गुरु को बिना कुछ कहे रवाना हो गया। सुबह-सुबह एक सेठजी भी शौच के लिए जा रहे थे। उन्होंने चेले को बगीचे में बैठा देखा तो पूछ लिया-"महाराज! यहाँ बैठे क्या कर रहे हो? साधु वेष छोड़कर यहाँ बैठना आपके लिए कितना हानिकारक है?"

चेले ने कहा- "मैं तो यहीं ठीक हूँ। गुरु रोज-रोज डाटी-डपटी करता है, भला-बुरा कहता है, मैं गुरु के व्यवहार से तंग आ गया हूँ।"

श्रावकजी ने सोचा- अभी चेला जी महाराज आवेश में है। श्रावक सुज्ञ था, इसलिए चेला जी महाराज से विनती करते कहा- "महाराज! एक बार फिर सोच लो। आप गुरु-सेवा के लाभ के साथ जीवन-निर्माण की ओर अग्रसर हो रहे थे, इसलिए हम सब आपकी इज्जत करते और आपको ऊँचे आसन पर बिठाते थे। अगर आप गुरु चरण-शरण छोड़कर चले गये तो आपको अब तक मिल रहा मान-सम्मान नहीं मिलेगा। आप मेरी बात पर विचार

करें।''

चेले को सेठजी की बात हितकर लगी। सेठजी ने कहा- ''महाराज! आप यह नहीं सोचे कि मैं गुरु महाराज के समक्ष किस मुँह से जाऊँगा? मैं आपके गुरु महाराज से प्रार्थना करूँगा और वे आपको अपने श्रीचरणों में जरूर स्थान देंगे।'' सेठजी चेले को साथ लेकर धर्मस्थान जहाँ गुरु महाराज विराज रहे थे, गए। सेठजी ने चेले को नीचे बैठा दिया और स्वयं ऊपर गुरु महाराज के पास जाकर उन्हें वन्दन-नमन करके पूछा- बाबजी! आपरो चेलो कठे है?

गुरु ने जवाब में कहा- 'चेलाजी तो लाम्बा गया।' अरे बाबजी! यह आप क्या कह रहे हैं? गुरु बोले- ''रोज-रोज की खटपट से तो उसका जाना ही ठीक था।'' सेठ समझदार था अतः निवेदन किया- ''बाबजी! आप अवस्था सम्पन्न हैं, आपका बुढ़ापा है और बुढ़ापे में किसी-न-किसी की सेवा की जरूरत तो है ही।'' श्रावकजी की बात गुरुजी को हितकारी लगी।

आज के युग में बात सुधारने वाले कम हैं और बात का बतंगड़ बनाने वाले अधिक मिलते हैं। सेठजी बात को सुधारने वाले थे। सेठजी ने गुरु महाराज से कहा- ''बाबजी! आपरो बुढ़ापो है, शरीर के पुद्गल कमजोर हो जाते हैं तो न चलना-फिरना होता है, न काम-काज ही हो सकता है। आँखें काम नहीं देती, घुटनों में दर्द के कारण चला नहीं जाता। कभी-कभी तो हिलना-डुलना भी दुःस्वार हो जाता है, इसलिए वृद्धावस्था में सेवा की जरूरत है।'' गुरु महाराज श्रावक जी की बात पर चिन्तन करने लगे। श्रावकजी ने कहा- ''महाराज! आप खूब आराम से सोच लें, मैं आपके शरीर की असक्तता के कारण निवेदन कर रहा हूँ कि आप चेले को जाने नहीं दे, आपके लिए सेवा जरूरी है। चेला बाजार में नहीं मिलता। आपने उसको तैयार किया है इसलिए आप उसे निभाएँ। नया चेला पहले तो कोई बनता नहीं और कदाचित् कोई बनने वाला हो तो उसे भी तैयार करने में समय लगता है।''

गुरु महाराज ने कहा- ''भाई! वह मर्जी से गया है इसलिए अब शायद ही वापस आए।''

श्रावकजी ने कहा- ''महाराज! आप इसकी चिन्ता नहीं करें।'' श्रावकजी ने आत्मविश्वास से इसलिए कहा था कि वे चेले को लेकर आए थे। गुरु महाराज के हाँ कहने पर सेठजी नीचे आए और चेले को लेकर ऊपर गये।

चेला गुरु के चरणों में माफी माँगता है और गुरु चेले को प्यार से उठाता है। गुरु-चेले दोनों की आँखों में मानो सावन-भादो बरस रहा है। आँखों से निकले आँसुओं से मन का सारा मैल धुल गया। गुरु-चेले में फिर से एक-दूसरे के प्रति प्रेम और आत्मीयता का ऐसा भाव जगा कि जिन्दगी भर उनमें फिर कभी खटपट नहीं हुई। वे बाप-बेटे की तरह एक-दूसरे को निभाते रहे। दोनों में निभने-निभाने की भावना भर गई। श्रावक के प्रयास से गुरु-शिष्य एक हो गये और जिन्दगी भर एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बने रहे।

चतुर श्रावक कभी युक्ति से तो कभी भक्ति से जोड़ता ही है। जोड़ने वाला श्रावक होता है, तोड़ने वाला श्रावक नहीं होता। आज कई श्रावक हैं जो बात-बात को बाजार भाव बेचते रहते हैं। खुद का प्रयास नहीं करते और कोई दूसरा प्रयास करे भी तो उसमें विभेद पैदा करने का प्रयास करते हैं तो उन्हें श्रावक कैसे कहें? दो व्यक्तियों में अनबन हो सकती है। अनबन होना अनहोनी नहीं है। गुरु शिष्य में अनबन हो सकती है, बाप-बेटे में मनमुटाव हो सकता है, सासू-बहू में खिंचाव हो सकता है, देराणी-जेठानी में खटपट हो सकती है। आप यदि जोड़ने वाले श्रावक हैं तो एक-दूसरे को प्रेम से समझाएँ, नजदीक लाने की कोशिश करें। श्रावक इधर-उधर बात करने के बजाय हित की भावना से जिनको समझाना होता है, उनको समझाता है। मिलाने वाले श्रावक कम हैं, अलगाव पैदा करने वाले कई मिल सकते हैं। जोड़ने वाले कम हैं, तोड़ने वालों की कमी नहीं है। सच्चा श्रावक हितबुद्धि से जोड़ने का काम करता है।

आज आपके पास पैसा बढ़ रहा है इसलिए दृष्टिकोण में पैसा हावी हो रहा है। जहाँ पैसा हावी है वहाँ विकृतियाँ पनपती हैं, कषाय बढ़ते हैं। वहाँ पर क्रोध, मान, माया, लोभ सभी जुड़ते चले जाते हैं। क्रोध-कषाय जहाँ भी है वहाँ जीवन-मूल्यों का ह्रास होता है। श्रावक किसी से मनमुटाव हो जाय तो वह उसे दूर करने का प्रयास करता है, गाँठ नहीं बाँधता। अगर गाँठ बाँध ली तो गृहस्थी चलाना भी मुश्किल हो जाता है। हाँ, मनमुटाव किसी में भी हो सकता है। मनमुटाव पति-पत्नी में हो जाता है। लेकिन वह मनमुटाव ज्यादा समय तक नहीं रहता। पति घर का मालिक है तो पत्नी भी कोई खरीदी हुई दासी नहीं है। खटपट हो जाने पर भी एक-दूसरा, एक-दूसरे को भूलता नहीं।

एक छोटी सी बात पर पति-पत्नी में मनमुटाव हुआ और पत्नी मायके चली गई। पति पत्नी को और पत्नी पति को भूल नहीं पा रहे हैं।

पति-पत्नी का झगड़ा लम्बा नहीं चलता। वह पत्नी जो छोटी सी बात पर मायके चली गई थी, सोचती है एक पत्र भी आ जाय तो मैं वापस घर चली जाऊँ। उधर पति सोचता है कि एक बार समाचार आ जाय तो मैं लेने के लिए चला जाऊँ। पति-पत्नी के झगड़े में झुके कौन? छोटा झुकता है। बड़ा, बड़ा ही रहता है, वह कभी छोटा नहीं होता। आपने सुना होगा-

क्षमा बड़न को होत है, छोटन को उत्पात।
कहाँ हरि को घटि गयो, जो भृगु मारी लात॥

भृगुऋषि ने आवेश में आकर विष्णुजी को लात मार दी। विष्णुजी ने कहा- आपके कोमल पैर मेरी वज्र-सी कठोर छाती पर पड़े, इसलिए कहीं चोट तो नहीं लगी। छोटा कभी ना समझी से तो कभी जानबूझकर उत्पात कर सकता है, मगर बड़ों को बड़प्पन रखना होता है। वे निभाने का प्रयास करते हैं इसीलिए बड़ों का छोटों पर सदा वात्सल्य भाव रहता है। बड़े वत्सलता का भाव रखें और छोटे श्रद्धा का भाव रखें तो शांति बनी रहेगी। जहाँ शांति है वहाँ समृद्धि है, सुख है, आनन्द है। आप निभने-निभाने की कला सीखें तो आपको जीवन में आनन्द प्राप्त होगा इन्हीं भावों के साथ....

प्रवचन-कण

तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा.

१. आस्था से वास्ता होने पर रास्ता स्वयं अनुशास्ता बन जाता है।
२. शान्तचित्त विचारों की उर्वरा भूमि है।
३. तीन मनोरथों का भावपूर्वक चिन्तन ही जीव को आगे बढ़ा देता है।
४. परिस्थिति का नहीं परिणति का परिवर्तन करना होगा।
५. परिधि पर नहीं केन्द्र पर श्रम करना होगा।
६. सम्यग्दृष्टि द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव को जानने वाला होता है।
७. लोग दीक्षा को अच्छी तो मानते हैं, किन्तु अपने घर से नहीं दूसरे के घर से हो, यह आशा रखते हैं। चिन्तन की यह कैसी विडम्बना है।

-श्री जिनेन्द्र जैन द्वारा संकलित

श्रमण का आहार

श्री उदयमुनि जी म.सा.

घर-परिवार, धन-वैभव, पद-प्रतिष्ठादि सबका त्याग करके, ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्षमार्ग की आराधना करने के लिये पंचमहाव्रतधारी, पाँच समितियों के पालक, तीन गुप्तियों से गुप्त, स्वाध्याय-ध्यान में लीन होकर कर्म-निर्जरा करने का संकल्प लेने वाले संयमी श्रमण-श्रमणियों का आहार कितनी बार, कब, कैसा, कितना, क्यों हो, इन बिन्दुओं पर आगमों में यत्र-तत्र पर्याप्त प्रावधान किए हुए हैं। यहाँ इन्हीं पर कुछ चिन्तन प्रस्तुत है-

आहार-ग्रहण और आहार-त्याग के ६ कारण- सिद्धान्त में आत्मा अनाहारी है, इसके आहार का परिग्रह नहीं, इच्छा है। शरीर धारण कर रखा है, इसमें दस द्रव्य प्राण हैं। ये प्राण बिना आहार के टिक नहीं सकते। इन प्राणों का घात करना भी निषिद्ध है। स्थानांग सूत्र में छः कारणों से श्रमण आहार करता हुआ भी भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता। वे कारण हैं - १. वेदना, २. वैयावृत्य, ३. ईर्यासमिति, ४. संयमरक्षा, ५. प्राणधारण, ६.धर्मचिन्तन। **वेदना**-उसके क्षुधावेदनीय कर्म का उदय होता है, जब जठराग्नि में क्षुधा उपजती है तब वीर्यांतराय कर्म के कारण वेदना सही नहीं जाती और चारित्र मोह के उदय से आहार ग्रहण करने की इच्छा होती है। यदि यह इच्छा निरन्तर बनी रहे, वृद्धिंगत हो तो उदय का दोष नहीं माना जा सकता है। अनुरागपूर्ण इच्छा होना तो अज्ञानभाव है जो ज्ञानी के नहीं होता। श्रमण ज्ञानी कहलाता है, इसलिये उस इच्छा को रोग मानकर मिटा देना चाहता है, उसके अधीन नहीं होना चाहता। ज्ञान-श्रद्धान में तो अपने को अनाहारी जानता-मानता है और वैसा ही हो जाने के लिए पुरुषार्थ करता है। प्राथमिक स्तर पर वैसा होने के लिए संयम रक्षार्थ द्रव्य प्राणों की रक्षा कर, शरीर के माध्यम से आत्मचिन्तन, ईर्यासमिति पालन और वैयावृत्त्य तप के लिए आहार करता है।

छः कारणों से आहार का त्याग अनिवार्य बताया है- १.शरीर में रोगादि का आतंक, २. देव-मनुष्य-तिर्यंचकृत किसी उपसर्ग के आ जाने पर ब्रह्मचर्य की रक्षा करने हेतु ३. प्राणियों पर दया करने (धर्मरुचि अणगार के

समान), ४. अनशनादि बाह्य तपाराधन के लिए, ५. प्रायश्चित्तादि आभ्यंतर तपों की आराधना के लिए ६. शरीर व्युत्सर्ग हेतु। इन कारणों में स्व-पर के द्रव्य प्राणों एवं स्वात्मा के भाव प्राणों की रक्षा का महत्त्व प्रतिपादित है। इसी साधना से वह द्रव्यदृष्टि से अपने अनाहारी स्वरूप में प्रविष्ट होता है।

आहार का स्वरूप (४२ दोषों से रहित)- श्रमण का आहार शुद्ध, सात्त्विक, एषणीय-प्रासुक हो। शुद्ध से अर्थ है- विकृत नहीं हो। उत्तराध्ययन सूत्र में 'ठंडा-बासी' ऐसा उल्लेख है, परन्तु यहाँ ध्यान रखना होगा कि उसमें जीवोत्पत्ति नहीं हुई है। आज के वैज्ञानिक मानते हैं कि उसमें सूक्ष्म जीवाणु (बेक्टीरिया) उत्पन्न हो जाते हैं। श्रमण को प्राणरक्षार्थ आहार लेना है, यदि रोग होने की संभावना हो तो ऐसा आहार निषिद्ध माना जाए। विकृत से अर्थ एक परम्परा यह मानती है कि यदि आहार-सामग्री अधिक दिन पुरानी हो तो भी निषिद्ध है। दूसरी परम्परा में इसे महत्त्व नहीं दिया है। फिर भी उत्पाद-दोषों में इसकी महत्ता भी है। सात्त्विक से अर्थ राजसी-तामसिक न हो । प्राकृतिक वैज्ञानिकों की दृष्टि से वह अति सुपाच्य हो। राजसी से अर्थ गरिष्ठ भोजन है। तामसिक में अधिक मिर्च-मसाले-बघार-धूंगार आता है। तामसिक में लहसुन-प्याज भी माना है। महावीर के मार्ग में जमीकंद को अनंतकाय माना है। इस दृष्टि से अनन्त जीवों की घात से बना आहार श्रमण के लिए निषिद्ध माना जाना चाहिए। इच्छा या स्वाद के लिये इनसे बने आहार का लेना तो अज्ञान-मिथ्यात्व पुष्ट करेगा, पर पात्र में आया लें तो गवेषणा के नियम निरर्थक ठहरेंगे। पात्र में आया लें, इस छूट की चरम परिणति बौद्ध भिक्षु को माँसाहारी बना चुकी है। अतः आधाकर्म और औद्देशिक आहार का निषेध किया है। आधाकर्म अर्थात् पाप से निष्पन्न और औद्देशिक अर्थात् श्रमण के निमित्त से बना हुआ। ***'जैसा खाए अन्न वैसा होय मन'*** सार्थक मुहावरा है। अतः अनन्तकाय से निष्पन्न आहार पाप-निष्पन्न माना जाए, इस तरह श्रमण जमीकन्द निष्पन्न आहार लेकर पाप प्रवृत्ति में ही पड़ा माना जाएगा।

हिंसाजन्य आहार- बाजार में बड़े कल-कारखानों में निर्मित आहार में भयंकर हिंसा होती है। मैदा, रवा, आटा-बेसन बिना देखे छाने काम में लिए जाते हैं। कई ऐसे केक, बिस्किट, डबलरोटी, आईसक्रीम आदि होते हैं जिनमें अंडे की

जर्दी, कत्लखानों से निकले माँस कलेवर-अंशों का मिश्रण होता है। पौष्टिक बनाने हेतु मछली-चूर्ण मिलता है। कितनी ही सफाई से बनाए, हलवाई के यहाँ वृहत् उत्पादन में बने मिष्ठान्न-नमकीन अयतना से बने होते हैं, हिंसा होती है। कई छोटे-छोटे जीवों का घात-उपघात होता है। ऐसे ही सैंकड़ों लोगों के लिए बने प्रीतिभोज के आहार में भी होता है। श्रमण के लिये ये हिंसाजन्य-आहार वर्जित माने गए हैं।

कई पेय पदार्थों में, औषधियों में अल्कोहल (मद्य) का अंश होता है, अतः वे निषिद्ध हैं। बाजार में बने कुछ आहार जलेबी-केक-बिस्कुट आदि कच्चे माल की सड़न क्रिया करके (फरमेन्टेशन) बनाए जाते हैं। अब तो एक 'यीष्ट' मिलाया जाता है जिससे सड़न-प्रस्फुलन शीघ्र हो जाता है, यह यीष्ट जीवाणुओं का पिंड होता है। श्रमण ऐसा आहार ले तो हिंसा का भागी होता है। वरक भी हिंसाजन्य सिद्ध हुआ है।

आहार में औषध-भैषज सम्मिलित है। आज जो औषधियाँ, एलोपैथी में प्रचलित हैं, उनमें कितने ही जीवों की हिंसा लगती है। मछली के तेल की औषधि बनती है। कत्लखानों से निकले हुए गो-रक्त को शक्तिवर्द्धक डेक्सोरेंज, प्लाज्मा प्रोटीन आदि में मिलाते हैं। कैप्सूल के खोल तो उसी कत्लखाने में काटे गए बैल-बछड़ों की आँतों से बनते हैं। मधुमेह के निवारण हेतु इंजेक्शन में सूअर के जिगर का सत्त्व होता है।

फिर इन औषधियों का प्रथम प्रयोग चूहे, बिल्ली, बन्दर आदि पर होता है, जिसमें कई पंचेन्द्रिय प्राणियों का घात, विराधना होती है, तब मनुष्यों के प्रयोग हेतु बाजार में भेजी जाती हैं। ये औषधियाँ तो घोर हिंसाजन्य ही हैं।

कई होमियोपैथी-औषधियों में भी तिलचट्टे, मकड़ी, कीट-पतंगों का सत्त्व मिला होता है। ये अहिंसक नहीं मानी जा सकती हैं। जर्मनी निर्मित में ये दोष नहीं मिलते हैं।

अनित्य, अशुचिमय, अशुचि से उत्पन्न जीव के अशाश्वत स्थान और दुःखों के भाजन इस क्षणभंगुर शरीर की रक्षा के लिए ऐसी हिंसाजन्य औषधियों का उपयोग यदि श्रमण करता है तो महाव्रत भी खंडित होते हैं और अज्ञान-मिथ्यात्व भी पुष्ट होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में श्रमण को रोगों के उपचार करवाने की मनाही है। यदि आर्त्तध्यान हो, प्राणरक्षा के लिए आवश्यक

माने तो एषणीय-प्रासुक, अहिंसक औषधि ही ले सकता है। अब तो कई अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं- श्रमण को ध्यान, प्राणायाम, एक्यूप्रेशर, चुम्बक, सूर्य-किरण आदि चिकित्साओं का सहारा लेना चाहिए। ऐसे हिंसाजन्य आहार-औषधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। भगवान की आज्ञा नहीं है।

आहार के संबंध में आगमिक प्रावधान भी द्रष्टव्य हैं-

१. **ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँचवीं भावना-** श्रमण स्निग्ध-सरस भोजन का त्यागी हो, चिकनाई वाले-दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड-मिश्री, पकवान, दर्पकारक (उत्तेजक होने से)नहीं ले।(प्रश्नव्याकरण सूत्र में यहाँ स्पष्ट निषेध है- नहीं ले।) व्याख्याकारों ने, लोलुप साधकों ने अर्थ निकाला कि प्रतिदिन न ले, अधिक नहीं ले, दिन में बार-बार नहीं ले। ये तीनों बातें तो स्निग्ध आहार के लिए नहीं लिखी ये तो सामान्य आहार के लिए लिखे गए हैं।

२. **'नो पणीयरसभोई भवइ'** अर्थात् प्रणीत रसयुक्त भोजन नहीं ले। (समवायांग सूत्र ९/५१) प्रणीत अर्थात् घी झरता हुआ गरिष्ठ आहार। ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों के संदर्भ में यह प्रावधान स्पष्ट करता है कि गरिष्ठ आहार आलस्य और प्रमाद ही नहीं, उन्माद पैदा करता है। ब्रह्मचर्य भंग हो सकता है। यहाँ भी "प्रतिदिन या बार-बार नहीं ले" ऐसी शब्दावली नहीं आई है। सुविधाभोगियों ने सुविधापूर्ण व्याख्याएँ की हैं।

३. उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य के दस समाधिस्थानों में तो ऐसे प्रणीत (गरिष्ठ) आहार से ब्रह्मचर्य में शंका-कांक्षा द्वारा साधु साधुता से ही गिर जाता है, इतना लिखा है।

४. आचारांग सूत्र और दशवैकालिक सूत्र में प्रणीत (गरिष्ठ-स्निग्ध) आहार निषिद्ध है।

रसना, स्पर्श को बलिष्ठ-पुष्ट करती है और ज्ञानियों ने इसी कारण ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए रसनेन्द्रिय को नियंत्रित-संयमित रखने के लिए आहार संबंधी कड़े निषेध प्रतिपादित किए हैं। अब तो शरीर-वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों के माध्यम से भी इसकी पुष्टि की है। नैसर्गिक-

आहारशास्त्री अपने अनुभवों से मान चुके हैं कि अप्राकृतिक आहार शरीर और मन दोनों को विकारी बनाते हैं।

रस परित्याग- इसी संदर्भ में रसपरित्याग तप का महत्त्व है। संयमी, पंचम महाव्रत रूप-संवर करके निर्जरा करे तभी संयम की सार्थकता है। तपों में उत्कृष्ट तप है- रस परित्याग। शासनपति चरम तीर्थंकर महावीर स्वामी की तप-साधना का, आचारांग सूत्र के नवम अध्ययन में विशद वर्णन है। प्रभु महावीर के साढ़े बारह वर्षों की तपस्या में २४९ दिन पारणे के आए थे। इतनी उत्कट, घोरातिघोर तप साधना में भी उड़द के बाकुले, रूखा-सुखा आहार, सत्तू, बैरचूर्ण, अरस-चावलों का आटा आदि पारणे में लेते थे। उत्तराध्ययन सूत्र में भी श्रमण के लिए रूखा-सूखा आहार लेने का आदेश है। अन्तकृत सूत्र में विगयरहित और आयम्बिल तप की आराधना करने वाली आदर्श महासतियाँ काली, महाकाली आदि का चित्रण भी प्रेरणादायी है।

दूध, दही, घी, तेल और खांड-गुड़-शक्कर को विगय और मक्खन-मधु को महाविगय माना गया है। एक परम्परा में छाछ में पड़े मक्खन को वैसा नहीं माना जाता है।

ऐसे रसपरित्याग से ब्रह्मचर्यवास-रूप संयम की सुरक्षा भी होती है और कर्म निर्जरा भी। रसना पर नियंत्रण से स्पर्शनेन्द्रिय पर भी नियंत्रण-नियमन हो जाता है। श्रमण को इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने हेतु जगह-जगह विशेष निर्देश दिए गए हैं।

आहार की शुद्धि- शुद्ध आहार में यह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि बनाने वाले भाई या बहन ने कितनी द्रव्य-भाव शुद्धि के साथ बनाया है। रजस्वला बहन तीन-चार दिन तक चूल्हे-परेंडे के पास नहीं जा सकती थी, उससे आहार-पानी विकृत होता है। क्लेश-क्रोध, हिंसादि पाप भावों में रत रहते हुए कोई आहार बनाता है तो वह आहार भी विकृत हो जाता है। इसलिए श्रमण को यह गवेषणा भी यथा संभव करना अपेक्षित है कि आहारदाता-निर्माता का मन-वचन-काया की भी शुद्धता रही हो और आहार भी शुद्ध हो, विरस, विकृत न हो। रात्रि में निर्मित भोजन विरस होता है और कुछ यह मानते हैं कि रात्रि भोजन के त्यागी श्रमण को ऐसा भोजन/आहार नहीं कल्पता है।

यह भी विचारणीय है कि श्रमण आहार कब, कितना, कितनी बार

और कैसे करें।

आहार कब करें?- आहारशास्त्री, विशेषतः प्राकृतिक आहार शास्त्री मानते हैं कि आहार भूख ही नहीं, कड़ी भूख लगने पर ही करे अन्यथा अपच, वायु-रक्त विकार आदि कई रोग हो जाते हैं। वमन-दस्त-पेचिस भी हो जाते हैं। संयमी साधक ने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर जितेन्द्रिय हो जाने के लिए पंच महाव्रत धारण किए हैं अतः संयम के साथ तप का विधान है। अनशन तप करने के बाद ही ज्ञात होता है कि पेट की खूब-भूख किसे कहते हैं। इसलिए श्रमण जिह्वा के अनुसार नहीं पेट की माँग के अनुसार, जब पेट मांगे तभी आहार करे। अन्यथा संयम की विराधना होगी, शरीर रोग-आतंक से ग्रस्त हो जाएगा।

उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्रों के अनुसार तीसरे प्रहर में आहार का विधान है। रात्रि-भोजन का तो श्रमण सर्वथा त्यागी होता ही है। देश, काल, परिस्थिति बदल जाने से तीसरे प्रहर में आहार शक्य नहीं है, इसलिए जब मिले तब ग्रहण करे। परन्तु उपयोग करते समय भूख और भूख की मात्रा तो ध्यान में ली ही जानी चाहिए।

आहार की मात्रा- व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती) में प्रथम खंड के सप्तम शतक, प्रथम उद्देशक के अनुसार बत्तीस कवल की मात्रा को न लांघे। प्राकृतिक आहारशास्त्री मानते हैं कि यदि आहार को इतना चबाया जाए कि मुँह में ही रस बन जाए तो उक्त प्रमाण पर्याप्त है। कम चबाया, बिना चबाया खाने से आंतों पर भार पड़ता है और आधे से ऊपर आहार निरर्थक बाहर फेंका जाता है, अपचा रहता है। इससे पेट के कई रोग भी हो जाते हैं। श्रमण को अपनी निर्विघ्न साधना के लिए प्रमाण और पाचन प्रक्रिया को भी ध्यान में रखना चाहिए।

आहार कैसे करें?- प्रथमतः तो आहार ही रसयुक्त न हो। दूसरा श्रमण केवल भगवान् की आज्ञा के अनुसार छः कारणों से ही आहार कर सकता है अर्थात् आहार के प्रति आसक्ति, गृद्धता, लुब्धता नहीं हो। उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्रों में स्पष्ट आया है कि वह ग्रहणैषणा के दोष टालकर आहार करे अर्थात् अच्छा पकाया, रसयुक्त, स्वादिष्ट बनाया आदि भाव मन में भी

नहीं आए। वैसे ही अच्छा नहीं बना तो वह भाव भी नहीं आए। १८ पापों में रति-अरति को भी गिना है। मनोज्ञ में आसक्त, लुब्ध हो और अमनोज्ञ में दुःखी-खेदित हो तो श्रमण पाप का भागी होता है। ब्रह्मचर्य की पाँच भावनाओं में भी आहार की प्रशंसा-बुराई करने की मनाही है।

उक्त संदर्भित भगवती सूत्र में भी आया है कि यदि श्रमण मूर्च्छित-गृद्ध, ग्रथित, आसक्त होकर आहार करे तो अंगार दोष से दूषित होता है। खेदित-क्रोधित होकर आहार करे तो धूम दोष और स्वाद हेतु संयोग (एक वस्तु में दूसरी मिलाकर) आहार करे तो संयोजना दोष से दूषित होता है। अतः श्रमण इन दूषणों से बचे। सर्प जैसे बांबी में धड़ से प्रवेश करता है ऐसे श्रमण भी आहार करे। इसका अर्थ बिना चबाए धड़ा-धड़ खा ले, ऐसा नहीं है। अत्यन्त नीरस-उदासीन भाव से, संयम की आराधना के लिए आवश्यक मानकर ही आहार करे, बलिष्ठ-पुष्ट होने के लिए नहीं।

आहार नीचे गिराता हुआ, चप-चप आवाज करता हुआ आहार न करे, ऐसे विधान भी अन्य प्राणियों की विराधना से बचने एवं साथी साधक को बाधा न हो इस हेतु किए हैं। आहार प्रमाणानुसार ही लाए, क्योंकि अधिक लाकर परठने को दोषपूर्ण बताया है। प्रायश्चित्त और दंड का विधान किया है। सम्यक् गवेषणा के बाद भी दूषित, जीव घातक अथवा नीरस-विकृत-निषिद्ध आहार आ गया हो तो गुरु आज्ञा से परठने का भी विधान है।

द्रव्य प्रयोग सीमा- आहार में द्रव्य सीमा का भी महत्त्व है। श्रमण को द्रव्यों की सीमा रखना चाहिए। अब वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि एक साथ कई वस्तुओं या विभिन्न रसों, एकाधिक रसों के पेट में एक साथ जाने से आँतों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। अतः द्रव्य सीमा, विगय विरति, विगय सीमा वैज्ञानिक भी है और साधना में स्फूर्ति कारक भी। द्रव्यसीमा वाला साधक कई द्रव्यों को मिला ले तो नियम तो पाला, परन्तु कई कई रस एक साथ पेट में जाने से विकार होते हैं। न्यूनतम वस्तुएँ, एक या दो प्रकार की हो तो पाचन शीघ्र होता है अन्यथा वायुविकार, अपच आदि रोग होते हैं। श्रमण को इन आतंकों से भी बचना चाहिए।

आहार कितनी बार?- रोग या विशिष्ट शरीर स्थिति संहनन को पृथक् रखकर सोचें तो प्राकृतिक आहारशास्त्रियों ने केवल एक बार पूर्ण आहार को पर्याप्त

माना है। श्रमण तो आत्मार्थ में श्रम करने के लिए संयम ग्रहण करता है, अतः शरीर और स्वाद का लक्ष्य नहीं कर सकता। इसलिए उत्तराध्ययन, दशवैकालिक सूत्रों में एक बार ही आहार लेने का विधान किया गया है। संथारा-संलेखना में साधक भक्त प्रत्याख्यान करता है तब अमुक दिनों की संलेखना में वह दुगुने भक्तों का प्रत्याख्यान भी करता रहा है। ऐसे उल्लेखों से श्रमण के लिए दो बार और संहनन, देश-काल-परिस्थिति, 'काले-कालं समायरे' एक प्रहर का दूसरे प्रहर में ग्रहण आदि विधानों से दो बार आहार भी सिद्ध होता है, परन्तु यदि एक सूत्र एक भक्त का विधान करे तो दूसरे सूत्र में 'एक प्रहर का दूसरे में ग्रहण' शब्दावली को परस्पर विरोधी नहीं माना जा सकता। तब इस विधान का अर्थ यह लेना उपयुक्त है कि प्रथम प्रहर में लाते-लाते लेकर आया तब तक प्रहर बीत गया तो उसे वह दूसरे प्रहर में भी ग्रहण कर सकता है। ऐसा ही अर्थ कालातिक्रान्त और मार्गातिक्रान्त का लेना चाहिए। संहनन नहीं है अतः दो या अधिक बार आहार करते हैं तो उसे साधना में कमजोरी मानकर उसे निकालने का भरपूर पुरुषार्थ कर आत्मसाधना में अधिकाधिक समय लगाना चाहिए।

सदा याद रखें

प्राणिमित्र नितेश नागोता जैन

लेने के लिए हैं-	सद्गुण	देने के लिए है-	क्षमा
करने के लिए है-	परोपकार	खाने के लिए है-	गम
रखने के लिए है-	धैर्य	लुटाने के लिए है-	दया
छुपाने के लिए है-	दिखावा	मिटाने के लिए है-	अहम्
बढ़ाने के लिए है-	सद्ज्ञान	पाने के लिए है-	मोक्ष
छोड़ने के लिए है-	ईर्ष्या, द्वेष	भरने के लिए है-	संतोष
पीने के लिए है-	क्रोध	बोलने के लिए है-	मधुरता

अंतर्हृदय में रहे सदा जीवित-	मानवता
परायों को अपना बनाने के लिए है-	आत्मीयता
सहयोग, सेवा, सरलता से पनपती है-	मानवता

-१७५, जैन बोर्डिंग हाउस, भवानीमण्डी (राज.)

शोधालेख

ध्यानशतक : एक परिचय

डॉ. सागरमल जैन

साधना और ध्यान

जैन साधना वस्तुतः समत्वयोग की साधना है। समत्व की यह साधना ध्यान और कायोत्सर्ग के बिना संभव नहीं है। सामान्यतया व्यक्ति का ध्यान तो कहीं न कहीं केन्द्रित रहता है किन्तु जो ध्यान 'पर' केन्द्रित होता है अथवा जिसका विषय बाह्य जगत से संबंधित तथ्य होता है, चाहे फिर वह व्यक्ति हो या वस्तुएँ हों, वह ध्यान वस्तुतः ध्यान नहीं है, क्योंकि वह हमारी चेतना को उद्वेलित करता है। उसमें अनुकूल के प्रति राग और प्रतिकूल के प्रति द्वेष का जन्म होता है। राग और द्वेष की वृत्तियाँ पुनः आवेगों को या कषायों को जन्म देती हैं। कषायों की उपस्थिति से चेतना का समत्व भंग हो जाता है और चित्त उद्वेलित बना रहता है। यही कारण है कि जैन आचार्यों ने आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को ध्यान के रूप में वर्गीकृत करते हुए भी साधना की दृष्टि से उन्हें त्याज्य ही माना है।

यद्यपि जैन आगम-साहित्य में और परवर्ती ग्रन्थों में इन दोनों ध्यानों के स्वरूप, लक्षण, विषय, आलंबन, स्वामी(कर्ता) आदि की विस्तृत चर्चा हुई है, किन्तु उसका कारण यह है कि इन अशुभ ध्यानों का स्वरूप समझकर ही इनका निराकरण किया जा सकता है। अतः जैन परम्परा के ग्रन्थों में ध्यान की जो चर्चा हुई है उसमें शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार के ध्यानों की चर्चा मिलती है। आर्त्त और रौद्र ध्यान अशुभ ध्यान हैं। उनमें प्राणी की स्वाभाविक रूप से प्रवृत्ति पाई जाती है, जबकि धर्मध्यान शुभध्यान है वह साधना का प्रथम चरण है। ध्यान-साधना के क्षेत्र में अन्तिम ध्यान तो शुक्ल ध्यान ही माना गया है। यह शुभ और अशुभ से परे शुद्ध स्वरूप का ध्यान है। आर्त्त और रौद्रध्यान के विषय बाह्य होते हैं, जबकि धर्मध्यान और शुक्लध्यान के विषय परवस्तु न होकर स्वस्वरूप ही होता है। यद्यपि धर्मध्यान के परहित और करुणा से युक्त होने के कारण किसी दृष्टि से उसे पर से संबंधित माना जा सकता है, किन्तु मूलतः वह आत्मनिष्ठ ही होता है। शुक्लध्यान शुद्ध ध्यान है उसका

सबंध मात्र स्वरूपानुभूति से है। इसमें आत्मा सविकल्पदशा से निर्विकल्पदशा में स्थित होती है। यह परम समाधि रूप है और मुक्ति का अनन्तर कारण है। यही कारण है कि जैन आचार्यों ने ध्यान के संबंध में पर्याप्त चिन्तन किया है और उस पर स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे हैं। ध्यान के संबंध में लिखे गये ग्रन्थों में 'झाणज्झयण' अपरनाम 'ध्यानशतक' प्राचीनतम है।

ग्रन्थ का नाम झाणज्झयण या ध्यान शतक

प्रस्तुत ग्रन्थ के नाम को लेकर दो अभिमत प्राचीनकाल से देखने में आते हैं। ग्रन्थकार ने स्वयं इसे ध्यानाध्ययन (झाणज्झयण) कहा है। जबकि इसके प्रथम टीकाकार आचार्य हरिभद्रसूरि ने आवश्यकनिर्युक्ति की टीका में इस ग्रन्थ को ध्यानशतक कहा है। वैसे ये दोनों नाम सार्थक ही प्रतीत होते हैं। प्रथम तो लेखक ने ग्रन्थ की प्रथम मंगल गाथा में "झाणज्झयणं पवक्खामि" कहकर ग्रन्थ को जो ध्यानाध्ययन नाम दिया है वह इसलिए दिया है कि उन्होंने अपने विशेषावश्यक भाष्य में आवश्यक सूत्र पर भाष्य लिखने की प्रतिज्ञा की थी। नंदीसूत्र में आवश्यकसूत्र के छः अध्ययनों को छः शेष स्वतंत्र ग्रन्थों के नाम से ही उल्लेखित किया गया है। उसमें पाँचवाँ आवश्यक कायोत्सर्ग रूप है। कायोत्सर्ग मूलतः ध्यान की ही एक अवस्था है, अतः उस अध्ययन पर भाष्य की दृष्टि से लिखी गयी गाथाओं को ध्यानाध्ययन कहा गया है। विशेषावश्यक भाष्य यद्यपि आवश्यकसूत्र के छहों अध्ययनों पर लिखा जाना था, किन्तु प्रस्तुत विशेषावश्यक भाष्य सामायिक अध्ययन पर ही सीमित होकर रह गया, शेष अध्ययनों पर नहीं लिखा जा सका। अतः एक संभावना यह भी है कि आचार्य जिनभद्रगणि की रुचि ध्यान में रही हो। इसलिए उन्होंने सामायिक के अध्ययन के बाद ध्यानाध्ययन पर भाष्य गाथाएँ लिखने का प्रयत्न किया हो और उन्हीं गाथाओं ने ही आगे चलकर एक स्वतंत्र ग्रन्थ का रूप ले लिया हो। इसलिए लेखक के द्वारा सूचित ध्यानाध्ययन नाम प्रामाणिक लगता है।

आचार्य हरिभद्र ने प्रतिक्रमण अध्ययन की निर्युक्ति की टीका में 'चउविहं झाणं' सूत्र पर टीका लिखते हुए ये गाथाएँ उद्धृत की हैं। हम देखते हैं कि आवश्यक निर्युक्ति की वृत्ति में आचार्य हरिभद्र ने इन गाथाओं को उसी सूत्र की वृत्ति में उद्धृत किया है। इससे ऐसा अवश्य लगता है कि ये गाथाएँ

भाष्य रूप हैं। यहाँ प्रारम्भ में ध्यान शतक नाम देकर बाद में झाणज्झयणं की वृत्ति भी लिखी है। अतः ध्यानशतक यह नामकरण हरिभद्र का ही है। क्योंकि उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों का नामकरण गाथा या श्लोक संख्या के आधार पर किया है, यथा- अष्टक, षोडशक, विंशिका, द्वात्रिंशिका, पंचाशक आदि। इसी प्रकार अपने योग संबंधी एक ग्रन्थ का नाम भी उन्होंने 'योग शतक' दिया है, अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का 'ध्यानशतक' नाम ग्रन्थकार के द्वारा न दिया जाकर ग्रन्थ के टीकाकार हरिभद्र के द्वारा ही दिया गया है, ग्रन्थकार द्वारा दिया गया नाम तो 'झाणज्झयण' ही है, अतः दो नामों के होने पर भी ग्रन्थ और ग्रन्थकार के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति की कल्पना नहीं करनी चाहिए।

ग्रन्थ के कर्ता- जहाँ तक प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता का प्रश्न है, परम्परागत दृष्टि से उसके कर्ता 'जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण' माने जाते हैं। इतना ही नहीं इसके संबंध में एक प्रमाण यह दिया जाता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कुछ संस्करण में इसकी १०६वीं गाथा में ग्रन्थ की गाथा संख्या का निर्देश करते हुए उसके कर्ता के रूप में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

पंचुत्तरेण गाहा सएण झाणस्स जं समक्खायं।
जिनभद्दखमासमणेहिं कम्मविसोहीकरणं जइणो॥

प्रस्तुत गाथा में एक सामासिक पद 'कम्मविसोहीकरणं' है। किन्तु जहाँ तक मेरा ज्ञान है प्रस्तुत गाथा में 'कम्मविसोहीकरणं'' यह सामासिक पद जिनभद्रगणि का विशेषण तो नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ इस सामासिक पद में प्रथमा या द्वितीया विभक्ति है जबकि जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण में तृतीया बहुवचन या पंचमी विभक्ति है। अतः ''कम्मविसोहीकरणं'' यह या तो जिनभद्रगणिकृत किसी अन्य ग्रन्थ का नाम हो सकता है या फिर प्रस्तुत झाणज्झयण को ही कर्मविशुद्धिकारक कहा गया है। हमारी दृष्टि में यही विकल्प समुचित है, क्योंकि ध्यान तप का ही एक प्रकार है और जैन-दर्शन में तप को कर्म विशुद्धि या कर्म-निर्जरा का हेतु माना जाता है। पुनः ध्यान में शुक्ल ध्यान ही ऐसी अवस्था है कि जिसके चतुर्थ चरण में सर्व कर्मों का क्षय हो जाता है। अतः 'कम्मविसोहीकरणं' इस 'झाणज्झयणं' नामक ग्रन्थ का ही विशेषण है। अतः इस समस्त पद को इस रूप में लेना चाहिए- कम्मविसोहीकरणं झाणज्झयणं। मेरी दृष्टि में इस गाथा का अन्वय भी इस रूप

में करना होगा-

जिनभद्दखमासमणेहिं गाहा पंचुत्तरेण सएण जइणो कम्मविसोही करणं झाणज्झयणं समक्खायं॥

इसी गाथा के आधार पर 'विनयभक्ति सुन्दर चरण ग्रन्थमाला' द्वारा प्रकाशित संस्करण में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण को इसका कर्ता बताया गया है।

किन्तु यहाँ एक समस्या यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कुछ प्रकाशित संस्करणों में एवं हरिभद्र की आवश्यक वृत्ति में मात्र १०५ गाथाएँ ही मिलती है। उसमें १०६वीं गाथा नहीं है। इस आधार पर पण्डित बालचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री ने ध्यानशतक की अपनी भूमिका में यह शंका प्रस्तुत की है कि ध्यानशतक के कर्ता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण नहीं है। यदि हम पंडित जी की इस बात को स्वीकार करके यह मान भी लें कि १०६वीं गाथा मूलग्रन्थकार की न होकर के बाद में किसी के द्वारा जोड़ी गई है तो भी इस आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण नहीं है, क्योंकि स्वयं पंडित बालचन्द्र जी शास्त्री ने अपनी भूमिका में ही इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपनी कृतियों यथा-विशेषावश्यक भाष्य, जीतकल्प भाष्य आदि में भी लेखक के रूप में अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु कर्ता के नाम के अनुल्लेख से 'ध्यानाध्ययन' की अन्यकर्तृकता सिद्ध नहीं होती है। हम उनसे सहमत होकर यह मान सकते हैं कि यह अंतिम गाथा बाद में किसी के द्वारा जोड़ी गई है। किन्तु उनकी इस बात से प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता जिनभद्रगणि नहीं है यह फलित नहीं होता है। क्योंकि इस संबंध में अन्य अनेक साधक प्रमाण भी उपस्थित हैं। यह भी सत्य है कि इस १०६वीं गाथा में यह कहा गया है कि जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के द्वारा यह ग्रन्थ रचा गया। यह कथन स्वयं लेखक के द्वारा तो नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यदि लेखक स्वयं इस गाथा के रचयिता होते तो वे यह लिखते 'मुझ जिनभद्रगणि द्वारा रचा गया'। अतः इस गाथा का अन्यकर्तृक और प्रक्षिप्त होना तो सिद्ध है, किन्तु पंडित बालचन्द्रजी का यह कहना कि यह गाथा असंबद्ध सी है उचित नहीं, क्योंकि प्रस्तुत गाथा में ग्रन्थ की गाथा संख्या का उल्लेख करते हुए ही ग्रन्थकार का उल्लेख हुआ है। अतः यह गाथा असंबद्ध नहीं कही जा सकती। अब प्रश्न यह उठता है कि

यह गाथा प्रस्तुत कृति में कब जोड़ी गई? वस्तुतः यह गाथा प्रस्तुत कृति में हरिभद्र की टीका के पश्चात् ही जोड़ी गई होगी और यही कारण हो सकता है कि हरिभद्र ने इस गाथा पर टीका न लिखी हो। दूसरे यदि हरिभद्र स्वयं इस गाथा को जोड़ते तो मूल गाथाओं के बाद इस गाथा को अवश्य देते, किन्तु उनकी टीका में इस गाथा की अनुपलब्धि यही सिद्ध करती है कि यह गाथा आवश्यक की हरिभद्रीय टीका के बाद ही जुड़ी होगी। किन्तु हरिभद्रीय टीका के पश्चात् मलधारी हेमचन्द्र द्वारा जो टिप्पण लिखे गये उनमें भी इसके कर्ता के संबंध में कोई संकेत नहीं किया गया। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह गाथा मलधारी हेमचन्द्र के टिप्पण के बाद ही प्रक्षिप्त हुई होगी अर्थात् ईसा की बारहवीं शती के पश्चात् ही प्रक्षिप्त हुई होगी।

यह सत्य है कि पं. दलसुखभाई मालवणिया ने गणधरवाद की प्रस्तावना में भी ध्यान शतक/झाणज्झयण के जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित होने में संदेह व्यक्त किया है। उनके संदेह का आधार भी हरिभद्रीय टीका और मलधारी हेमचन्द्र के टिप्पण में कर्ता के नाम का अनुल्लेख ही है। पं. बालचन्द्र जी, पं. दलसुखभाई के इस संदेह से तो सहमत होते हैं, परन्तु पं. दलसुखभाई के इस निर्णय को स्वीकर क्यों नहीं करते हैं, कि यह आवश्यक निर्युक्तिकार की कृति है। पं. दलसुखभाई गणधरवाद की भूमिका में स्पष्टतः यह लिखते हैं कि "हरिभद्रसूरि ने इसे जो शास्त्रान्तर कहा है, इससे यह स्वतन्त्र ग्रन्थ है, यह तो निश्चित है, किन्तु यह आवश्यक निर्युक्ति के रचयिता की कृति नहीं है यह उससे फलित नहीं होता है। उसके प्रारम्भ में योगीश्वर और जिन को नमस्कार किया गया है, इस कारण से हरिभद्रसूरि इसे आवश्यक निर्युक्तिकार की कृति नहीं मानते हों, यह तो हो नहीं सकता। कारण यह है कि किसी नवीन प्रकरण को प्रारम्भ करते हुए निर्युक्तियों में कितनी ही बार तीर्थंकरों को नमस्कार किया गया है। अतः उसे निर्युक्तिकार भद्रबाहु (द्वितीय) की ही कृति मानना चाहिए।"

यद्यपि इस ग्रन्थ की शैली एवं भाषा की, निर्युक्ति की शैली और भाषा से निकटता है, अतः उसे निर्युक्तिकार की कृति मानने में विशेष बाधा नहीं है। पं. बालचन्द्र जी यह 'झाणज्झयण' जिनभद्रगणि की कृति नहीं है इस हेतु पंडित दलसुखभाई के तर्क का अपने पक्ष में उपयोग करते हैं, किन्तु उनके

इस निर्णय को कि यह ग्रन्थ निर्युक्तिकार की कृति है, क्यों स्वीकार नहीं करते हैं? वे इसका तार्किक खण्डन भी नहीं करते हैं। संभवतः उन्हें इसमें यही कठिनाई प्रतीत होती है कि चाहे इसे निर्युक्तिकार की कृति मानें या भाष्यकार की कृति मानें दोनों ही स्थितियों में वे श्वेताम्बर परम्परा की कृति नहीं मानते हैं। किन्तु वे यह भी सिद्ध नहीं कर पाते हैं कि यह किस अन्य आचार्य की कृति है और वह कौन हो सकता है।

केवल इस आधार पर कि आचार्य हरिभद्र ने अपनी टीका में और आचार्य मलधारी हेमचन्द्र ने अपने टिप्पण में इसे जिनभद्रगणि की कृति नहीं बताया है- इसे जिनभद्र की कृति मानने से इंकार कर देना समुचित नहीं है। क्योंकि दोनों ने उनके सामने जो मूलपाठ था उसी पर टीका या टिप्पण लिखे। जब मूल में नामोल्लेख वाली गाथा उनके समक्ष थी ही नहीं तो वे किस आधार पर कर्ता के नाम का उल्लेख करते और जब जिनभद्रगणि की अपनी किसी भी कृति में अपना नाम देने की प्रवृत्ति ही नहीं रही तो फिर इस कृति में वे अपना नाम कैसे देते?

पण्डित बालचन्द्रजी ने इस ग्रन्थ को जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की कृति मानने से जो इंकार किया है, उसका संभवतः मुख्य कारण यही है कि वे इसे किसी श्वेताम्बर आचार्य की कृति मानना नहीं चाहते हैं, किन्तु उनका यह मन्तव्य इसलिए सिद्ध नहीं हो सकता कि कृति मूलतः अर्द्धमागधी भाषा में ही लिखी गई है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती जो भी दिगम्बर आचार्य हुए हैं उन सबने शौरसेनी प्राकृत में ही अपने ग्रन्थ लिखे हैं, जबकि यह ग्रन्थ पूर्णतः अर्द्धमागधी में ही पाया जाता है इस पर महाराष्ट्री प्राकृत का प्रभाव भी प्रायः अधिक नहीं देखा जाता है। वैसे अर्द्धमागधी और महाराष्ट्री प्राकृत में जो भी लेखन हुआ है वह प्रमुखतः श्वेताम्बर आचार्यों के द्वारा ही हुआ है। अतः इतना सुनिश्चित है कि यह ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में ही निर्मित हुआ है। पुनः आचार्य हरिभद्र ने इस पर जो टीका लिखी है, वह भी मूलतः श्वेताम्बर परम्परा की है।

अतः ग्रन्थकर्ता के रूप में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं आती है।

प्राचीन जैन आचार्यों की यह प्रवृत्ति रही है कि वे अपनी किसी रचना में अपने नाम का उल्लेख नहीं करते थे, यही कारण है कि विशेषावश्यक भाष्य,.जीतकल्पभाष्य, विशेषणवती आदि ग्रन्थों में जिनभद्रगणि ने भी कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इस आधार पर विशेषावश्यकभाष्य, जीतकल्प भाष्य, विशेषणवती आदि को किसी अन्य की कृति नहीं माना जा सकता है। इससे तो यह ही सिद्ध होता है कि ध्यानशतक के कर्ता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ही हैं और कर्ता के नाम के संबंध में किसी प्रकार की भ्रांति न हो इसलिए परवर्तीकाल में किसी ने १०६वीं गाथा जोड़कर कर्ता का नाम निर्देश कर दिया है। मात्र यही नहीं दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द, मूलाचार के कर्ता वट्टकेर आदि ने भी अपनी कृतियों में कहीं अपने नाम का निर्देश नहीं किया है, ऐसी स्थिति में क्या समयसार, मूलाचार आदि के कर्तृत्व पर भी संदेह किया जायेगा?

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ विक्रम की आठवीं शताब्दी में आचार्य हरिभद्र के समक्ष उपस्थित था। जिनभद्रगणि का काल लगभग छठी शताब्दी माना जा सकता है। जिनभद्र के पश्चात् और हरिभद्र के पूर्व जो प्रमुख श्वेताम्बर आचार्य हुए हैं उनमें तत्त्वार्थसूत्र के टीकाकार सिद्धसेन गणि क्षमाश्रमण और चूर्णिकार जिनदासगणि को छोड़कर ऐसे कोई अन्य समर्थ आचार्यों के नाम हमारे समक्ष नहीं हैं, जिन्हें इस ग्रन्थ का कर्त्ता बताया जा सके। ये दोनों भी इसके कर्ता नहीं हैं यह भी सुस्पष्ट है। अतः यह निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि ध्यानशतक के रचनाकार श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ही हैं।

मेरी दृष्टि में इसे निर्युक्तिकार की रचना मानने में भी एक कठिनाई है कि आवश्यक निर्युक्ति में प्रतिक्रमण निर्युक्ति की और कायोत्सर्ग निर्युक्ति की जो गाथाएँ हैं, उनसे ध्यानाध्ययन की एक भी गाथा नहीं मिलती है। वस्तुतः यह ग्रन्थ निर्युक्ति के बाद का और जिनदासगणि महत्तर की चूर्णियों के पूर्व भाष्यकाल की रचना है, अतः इसके कर्ता विशेषावश्यक भाष्य के कर्ता जिनभद्रगणि ही होना चाहिए। जहाँ तक झाणज्झयण को निर्युक्तिकार भद्रबाहु की रचना मानने का प्रश्न है, इस संबंध में हमारे पास में कोई भी ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है, केवल यह मान करके कि आचार्य हरिभद्र ने आवश्यक

निर्युक्ति की व्याख्या में इसे समाहित किया है, मात्र इसी आधार पर इसे निर्युक्तिकार की रचना नहीं माना जा सकता है। क्योंकि आचार्य हरिभद्र ने आवश्यक निर्युक्ति की टीका में अन्य-अन्य ग्रन्थों के भी संदर्भ दिये हैं और जिनके कर्ता निश्चित ही निर्युक्तिकार नहीं हैं। अतः आचार्य हरिभद्र की टीका में उद्धृत होने मात्र से इसे निर्युक्तिकार की रचना मानना संभव नहीं है। निर्युक्तियों के बाद में भाष्यों और चूर्णियों का काल आता है और प्रस्तुत कृति हरिभद्र के पूर्व होने से उसे भाष्यकार की रचना मानना ही उपयुक्त है, क्योंकि चूर्णियाँ तो प्राकृत गद्य में लिखित हैं, अतः उनकी शैली भिन्न है। शैली, भाषा आदि की अपेक्षा से इसे विशेषावश्यक भाष्य के कर्ता जिनभद्रगणि की कृति मान लेना ही संभव है।

रचनाकाल

जहाँ तक प्रस्तुत कृति के रचनाकाल का प्रश्न है यदि हम इसे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की रचना मानते हैं तो उनका जो काल है वही इस कृति का रचनाकाल होगा। विचार श्रेणी ग्रन्थ के अनुसार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का स्वर्गवास वीर संवत् ११२० में हुआ। तदनुसार उनका स्वर्गवास विक्रम संवत् ६५० या ईस्वी सन् ५९३ माना जा सकता है। धर्मसागरी पट्टावली के अनुसार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का स्वर्गवास काल वि.सं. ७०५ के लगभग माना जाता है। तदनुसार वे ईस्वी सन् ६४९ में स्वर्गस्थ हुए। चूंकि विशेषावश्यक भाष्य और उनकी स्वोपज्ञटीका उनकी अन्तिम कृति के रूप में माने जाते हैं अतः इतना सुनिश्चित है कि 'झाणज्झयण' की रचना ईस्वी सन् की ७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही कभी हुई है। यह निश्चित है कि जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण शक संवत् ५३१ अर्थात् ईस्वी सन् ६०९ के पूर्व हुए हैं, क्योंकि शकसंवत् ५३१ में लिखी विशेषावश्यक भाष्य ताड़पत्रीय प्रति के आधार पर प्रतिलिपि की गई अन्य ताड़पत्रीय प्रति आज भी जैसलमेर भंडार में उपलब्ध है। इस प्रकार विशेषावश्यक भाष्य की रचना शकसंवत् ५३१ अर्थात् ईस्वी से सन् ६०९ से पूर्व ही हुई है। अतः विशेषावश्यक भाष्य का रचनाकाल सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद नहीं ले जाया जा सकता है। अतः ध्यानशतक की रचना ईस्वी सन् की छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और सातवीं शती प्रथम दशक के पूर्व ही माननी होगी।

पं. दलसुखभाई ने इसे निर्युक्तिकार भद्रबाहु की रचना होने की कल्पना की है। यद्यपि हम पूर्व में ही कल्पना को निरस्त कर चुके हैं फिर भी यदि हम निर्युक्तियों का रचनाकाल ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी मानते हैं तो प्रस्तुत कृति के रचनाकाल की पूर्व सीमा ईसा की २-३ शताब्दी और उत्तर सीमा ईस्वी सन् की छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है।

पं. बालचन्द्र जी ने अपनी प्रस्तावना में ध्यानशतक के आधार रूप स्थानांग आदि सभी अर्द्धमागधी आगमों को वल्लभी वाचना अर्थात् ईसा की ५वीं शताब्दी की रचना माना है, किन्तु यह उनकी भ्रांति ही है। वल्लभी वाचना वस्तुतः अर्द्धमागधी आगमों का रचनाकाल न होकर उनकी अंतिम वाचना का अर्थात् उनका संपादन काल है। उनकी रचना तो उसके पूर्व ही हो चुकी थी। स्थानांग सूत्र जो प्रस्तुत ध्यानशतक का आधार ग्रन्थ माना जा सकता है। उसकी रचना उसके काफी पूर्व ही हो चुकी थी चूंकि स्थानांग सूत्र एक संकलनात्मक ग्रन्थ है, उसमें नौ गण आदि के जो उल्लेख है वे भी उसे ईस्वी सन् की प्रथम-द्वितीय शताब्दी से परवर्ती सिद्ध नहीं करते हैं। स्थानांग सूत्र में आयारदशा आदि दस दशा ग्रन्थों के नाम और उनकी विषयवस्तु का जो उल्लेख है वह समवायांग और नन्दीसूत्र में वर्णित उनकी विषयवस्तु से काफी प्राचीन है, वे नागार्जुनीय (तीसरी शती) और देवर्द्धिगणि की वाचनी के पूर्व के हैं और ध्यानाध्ययन में ध्यान के उसी प्राचीन रूप का अनुसरण देखा जाता है। यदि झाणज्झयण अपर नाम ध्यानशतक का आधार स्थानांग सूत्र रहा हो तो भी वह ईस्वी सन् की दूसरी शती से पूर्ववर्ती तथा पाँचवीं-छठी शती से परवर्ती नहीं है क्योंकि विक्रम की आठवीं शताब्दी और तदनुसार ईस्वी सन् सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुए हरिभद्र स्वयं इसे न केवल उद्धृत कर रहे हैं, अपितु आवश्यक वृत्ति के अन्तर्गत उस पर टीका भी लिख रहे हैं।

अतः झाणज्झयण अपर नाम ध्यानशतक का रचनाकाल ईसा की दूसरी शती के पश्चात् और ईस्वी सन् की सातवीं शती के प्रथम दशक के पूर्व हो सकता है। फिर भी मेरी दृष्टि में इसे जिनभद्र क्षमाश्रमण की रचना होने के कारण ईस्वी सन् की छठी शती के अन्तिम चरण की रचना मानना अधिक उपयुक्त है।

ग्रन्थ की विषयवस्तु और उसका वैशिष्ट्य

प्रस्तुत ग्रन्थ में सर्वप्रथम मंगलगाथा में ग्रन्थ रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करने के पश्चात् दूसरी गाथा में ध्यान को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि अध्यवसायों की एकाग्रता ध्यान है और उनकी चंचलता 'चित्त' है यह चित्त भी तीन प्रकार का है- १. भावना रूप २. अनुप्रेक्षा रूप और ३. चिन्ता। भावना की अपेक्षा अनुप्रेक्षा में और अनुप्रेक्षा की अपेक्षा चिन्ता में चित्त की चंचलता वृद्धिगत होती जाती है। जबकि ध्यान में चित्त एकाग्र रहता है, सामान्य व्यक्तियों के लिए अन्तर्मुहूर्त तक चित्तवृत्ति का एकाग्र होना ध्यान है, किन्तु तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिन जब चौदहवें गुणस्थान में योग निरोध करते है अर्थात् मन, वचन और काया की प्रवृत्ति का निरोध करते हैं, तब उसे ध्यान कहते हैं। इसके पश्चात् ध्यान के चार प्रकारों अर्थात् आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान का उल्लेख करते हुए प्रथम दो को भवभ्रमण का कारण और अन्तिम दो को मुक्ति का साधन बताया गया है। चार ध्यानों को चार गतियों से जोड़ते हुए जैन परम्परा में यह कहा गया है कि आर्त्तध्यान तिर्यंच गति का, रौद्रध्यान नरक गति का, धर्मध्यान मनुष्य या देवगति का तथा शुक्लध्यान मोक्षगति का हेतु है। इसके पश्चात् प्रस्तुत ग्रन्थ में आर्त्तध्यान के चार प्रकारों- १. अनिष्ट या अमनोज्ञ का संयोग २. रोगादि की वेदना ३. इष्ट का वियोग और ४. निदान अर्थात् भविष्य संबंधी आकांक्षा का उल्लेख हुआ है। तत्पश्चात् यह बताया गया है कि रोगादि की वेदना में और रोग-मुक्ति के प्रयासों में भी वास्तविक मुनि को आर्त्तध्यान नहीं होता है, क्योंकि आलम्बन प्रशस्त होता है। इसी प्रकार मोक्ष की इच्छा भी निदान रूप नहीं है, क्योंकि उसमें राग-द्वेष और मोह नहीं है। इसके पश्चात् आर्त्तध्यान के लक्षण- आंक्रन्द, दैन्य आदि की चर्चा है। अन्त में आर्त्तध्यान में कौनसी लेश्या होती है और आर्त्तध्यान का स्वामी कौन है अर्थात् आर्त्तध्यान किन गुणस्थानवर्ती जीवों को होता है इसकी चर्चा है। इस प्रकार गाथा ६ से लेकर १८ तक बारह गाथाओं में आर्त्तध्यान संबंधी विवेचन है। ज्ञातव्य है कि जैनधर्म में आर्त्तध्यान को ध्यान का एक रूप स्वीकार करके भी त्याज्य माना है।

आगे गाथा क्रमांक १९ से २२ तक चार गाथाओं में रौद्रध्यान के चार प्रकारों- १.हिंसानुबंधी २. मृषानुबंधी ३. स्तेयानुबंधी और ४. संरक्षणानुबंधी

के स्वरूपों का विवेचन हुआ है। इसके पश्चात् गाथा क्रमांक २३-२४ में यह बताया गया है कि रौद्र ध्यान स्वयं करना, अन्य से करवाना अथवा करते हुए का अनुमोदन करना- ये तीनों ही राग-द्वेष और मोह युक्त होने से नरक गति के हेतु हैं। इसके पश्चात् २५वीं गाथा में आर्त्तध्यान में कौनसी लेश्या होती है, इसकी चर्चा की गई है। तदनन्तर रौद्रध्यान के लक्षणों की चर्चा की गई है। रौद्रध्यान को ध्यान के अन्तर्गत वर्गीकृत करके भी उसे हेय और नरकगति का हेतु बताया गया है। आर्त्त और रौद्रध्यान हेय या त्याज्य होने से प्रस्तुत कृति में इन दोनों का विवेचन अत्यन्त संक्षेप में मात्र २१ गाथाओं (७-२७) में हुआ है। जबकि धर्मध्यान और शुक्लध्यान का विवेचन लगभग ७८ गाथाओं में किया गया है।

धर्मध्यान की चर्चा के प्रसंग में प्रस्तुत ग्रन्थ में धर्मध्यान का विवेचन निम्न बारह द्वारों अर्थात् विभागों में किया गया है- १.भावनाद्वार २. देश अर्थात् स्थल द्वार ३. काल अर्थात् ध्यान का समय ४. ध्यान के आसन, ५.धर्मध्यान के आलम्बन (स्वाध्याय) ६. ध्यान का क्रम ७. ध्यान का विषय ८. ध्याता की योग्यता जैसे अप्रमत्तता आदि ९. अनुप्रेक्षा अर्थात् ध्यान में चिन्तनीय विषय १०. धर्मध्यान की लेश्या (मनोवृत्ति) ११. धर्मध्यान के लक्षण १२. धर्मध्यान फल या परिणाम। इसी क्रम में धर्मध्यान के प्रकारों का भी उल्लेख हुआ है- १. आज्ञा विचय अर्थात् वीतराग परमात्मा ने क्या-क्या करने या नहीं करने का आदेश दिया है, उसका चिन्तन करना २. अपाय विचय अर्थात् राग, द्वेष, मोह, कषाय आदि की दोषरूपता का चिन्तन करना ३. विपाक विचय-कर्मों के उदय अर्थात् विपाक(फल) का विचार करना ४. संस्थान विचय अर्थात् लोक के स्वरूप पर विचार करना। साथ ही यह भी बताया गया है कि अप्रमत्त संयत अर्थात् सातवें गुणस्थान से लेकर ११वें उपशांत मोहनीय या १२वें क्षीणमोहनीय गुणस्थानवर्ती मुनि धर्मध्यान के अधिकारी या ध्याता होते हैं।

इसी प्रकार धर्मध्यान के ध्याता में तेजो, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत कृति ध्यानशतक या ध्यानाध्ययन में गाथा क्रमांक २८ से ६८ तक ४१ गाथाओं में धर्मध्यान का विवेचन हुआ है। इसके आगे ३७ गाथाओं में शुक्लध्यान का विवेचन है।

प्रस्तुत कृति में धर्मध्यान के समान शुक्लध्यान के भी बारह द्वार बताये गये हैं, किन्तु इनमें भावना, देश(स्थान), काल (ध्यान के योग्य समय) तथा आसन (ध्यान के आसन)- ये चार धर्मध्यान और शुक्लध्यान में समान होने से शुक्लध्यान की चर्चा के प्रसंग में इनका पुनः उल्लेख नहीं किया है। अतः सर्वप्रथम शुक्ल ध्यान के क्षांति (क्षमा), मार्दव (विनम्रता), आर्जव (सरलता) और मुक्ति (निर्लोभता) ये चार आलम्बन बताये गये हैं। वस्तुतः शुक्ल ध्यान का मुख्य लक्ष्य कषायों पर विजय प्राप्त करना है, अतः क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों के प्रतिरोधी चार धर्मों को शुक्ल ध्यान का आलम्बन कहा गया है। ध्यानक्रम की चर्चा करते हुए इसमें यह बताया गया है कि विषय संकोच अर्थात् संसार के विषयों के प्रति अनात्म भाव जाग्रत करते हुए अर्थात् ये मेरे नहीं है, मैं इनसे भिन्न हूँ आत्मा के शुद्ध ज्ञाता-द्रष्टा भाव पर चित्त को केन्द्रित करना-यह विषय संकोच का क्रम है, छद्मस्थ जीव इसी क्रम में शुक्लध्यान करता है, किन्तु वीतराग परमात्मा का शुक्लध्यान-योगनिरोध रूप शैलेषी अवस्था रूप होता है- यहाँ 'मन' 'अमन' हो जाता है। इसके तीन दृष्टान्त दिये गये हैं- जैसे मान्त्रिक शरीर में व्याप्त जहर को डंक स्थान पर लाकर निर्मूल कर देता है, वैसे ही शुक्लध्यानी अपने विषयों में व्याप्त मन को क्रमशः उसके विषय रूप विष का संकोच करते हुए आत्म तत्त्व पर केन्द्रित कर अमन या निर्विषय बना देता है। जिस प्रकार ईंधन को जलाते हुए ईंधन के अभाव में अग्नि स्वयं नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार मन अपने विषयों का त्याग करते हुए अन्त में अमन बन जाता है। जैसे कच्चे घड़े को अग्नि में पकाने पर उनकी आर्द्रता समाप्त हो जाती है। वैसे ही ध्यानाग्नि में तपाने से मन की आर्द्रता अर्थात् विषयानुगामिता समाप्त हो जाती है, फिर मनयोग, वचनयोग और काययोग का निरोध किस प्रकार और किस क्रम से होकर शैलेषी अवस्था प्राप्त होती है, इसकी चर्चा है। इसके पश्चात् शुक्ल ध्यान के चार चरणों- १. पृथकत्व वितर्क विचार अर्थात् आत्म-अनात्म का भेद विज्ञान २. एकत्व वितर्क अविचार अर्थात् आत्मा के शुद्ध स्वरूप में स्थिरता ३. सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति अर्थात् योग निरोध में प्रवर्तन शील आत्म स्थिति और ४. व्युछिन्न क्रिया अप्रतिपाती अर्थात् त्रियोग निरोध की अन्तिम स्थिति या निर्विकल्प आत्म-समाधि की अवस्था का विवेचन किया गया हैं। तत्पश्चात्

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाओं अर्थात् आस्रव हेतु, संसार की अशुभता, भवभ्रमण की अनन्त परम्परा और वस्तु की परिणमनशीलता का विचार किया गया है। यद्यपि ये अनुप्रेक्षाएँ शुक्लध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में ही संभव हैं। फिर शुक्ल ध्यान में लेश्या की स्थिति की चर्चा करते हुए कहा गया है कि शुक्लध्यान के प्रथम दो चरणों में शुक्ललेश्या, तीसरे चरण में परम शुक्ल लेश्या और चौथे चरण में लेश्या का अभाव होता है, लेश्या मनोवृत्ति रूप है, शुक्लध्यान के चतुर्थ चरण में मन 'अमन' हो जाता है, अतः वहाँ लेश्या नहीं होती है। तदनन्तर अवद्य (पूर्ण अहिंसा), असम्मोह, विवेक और व्युत्सर्ग- इन शुक्लध्यान के चार लक्षणों की चर्चा की गई है। शुक्लध्यान में आत्मा स्वरूपघात (स्वहिंसा) और परघात दोनों से रहित होता है, उसकी मोहदशा का निवारण हो जाने पर उसमें असम्मोह और विवेक गुण प्रकट हो जाते हैं। फिर शुक्लध्यान का जो महत्त्वपूर्ण लक्षण व्युत्सर्ग है वह महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही एक ऐसा लक्षण है जो शुक्ल ध्यान को अपने सम्यक् अर्थ में कायोत्सर्ग बना देता है, वीतराग-ध्यान बना देता है।

सामान्यतया जनसाधारण ध्यान और कायोत्सर्ग को एक मान लेता है किन्तु दोनों में अन्तर है। तप के बारह भेदों में ध्यान और कायोत्सर्ग को अलग-अलग माना है। ध्यान चित्त की एकाग्रता है, जबकि कायोत्सर्ग या व्युत्सर्ग निर्ममत्व का अभ्यास है। दूसरे शब्दों में ध्यान तो किसी एक विषय पर मन का एकाग्र होना है, जबकि व्युत्सर्ग में मन 'अमन' हो जाता है। यही कारण है कि व्युत्सर्ग ध्यान की उच्चतम या अन्तिम अवस्था है। व्युत्सर्ग में निर्ममत्व के साथ-साथ त्याग भी है। व्युत्सर्ग 'पर' में अनात्म बुद्धि या निर्ममत्व बुद्धि है। वह योग-निरोध है। वह वीतरागता की साधना से भी एक आगे बढ़ा हुआ चरण है। यही कारण है कि व्युत्सर्ग शुक्ल ध्यान का लक्षण कहा गया है।

एतदर्थ यह बताया गया है कि छद्मस्थ के संबंध में मन की एकाग्रता को ध्यान कहा जाता है जबकि वीतराग के संबंध में काय की निश्चलता को अर्थात् योग निरोध की शैलेषी अवस्था को ध्यान कहा जाता है। शुक्लध्यान के फल या परिणाम की चर्चा करते हुए कहा गया है कि शुक्ल ध्यान के प्रथम दो चरणों का फल शुभास्रवजन्य अनुत्तर स्वर्ग का सुख है जबकि अन्तिम दो

चरणों का फल कर्मक्षय और मोक्ष की प्राप्ति है। कहा गया है कि तप से कर्म-निर्जरा होती है, कर्म-निर्जरा से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ध्यान तप का प्रधान अंग है, अतः वह मोक्ष का हेतु है। अन्त में अनेक दृष्टान्तों द्वारा ध्यान मोक्ष का हेतु है, इस बात को सिद्ध किया गया है और कहा गया है कि ध्यान सभी गुणों का आधार स्थल है, दृष्ट और अदृष्ट सभी सुखों का साधक है अत्यन्त प्रशस्त है, वह सदैव ही श्रद्धेय, ज्ञातव्य एवं ध्यातव्य है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ ध्यान की परिभाषा, ध्यान का स्वरूप, ध्यान के प्रकार, उनके प्रभेद, स्वरूप, लक्षण, आलम्बन, ध्येय विषय, लेश्या, विभिन्न ध्यानों के स्वामी या अधिकारी ध्यान के योग्य स्थान, ध्यान के योग्य समय, ध्यान के आसन/मुद्रा आदि पर प्रकाश डालता है। इसके विवेच्य विषयों में ध्यान के भेद, प्रभेद, उनके लक्षण, आलम्बन आदि की चर्चा तो स्थानांग सूत्र और तत्त्वार्थ सूत्र पर आधारित है, किन्तु ध्यान के स्थान, काल, आसन आदि की चर्चा इसकी अपनी मौलिकता है, जिसका परवर्ती ग्रन्थों जैसे ज्ञानार्णव, योगशास्त्र आदि में भी अनुसरण किया गया है।

-संस्थापक निदेशक

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

नेकी करो और भूल जाओ

एक दानी से पूछा गया- "जब तुम दान देते हो तो अपना सिर क्यों झुका लेते हो? ऐसे में ऐसा होता है कि जो एक बार दान ले जाता है वह दुबारा आकर फिर पंक्ति में लग जाता है।"

वह दानी धीरे से मुस्कराया और बड़े ही विनम्र स्वर में बोला- "मैं सिर इसलिए झुका लेता हूँ ताकि लेने वाला मेरा मुँह न देखे। इसका कारण यह है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि सबको मनचाही वस्तु दे सकूँ। मुझे शर्म लगती है, इसलिए सिर झुकाए रहता हूँ।"

आप भी ऐसे ही बनो। नेकी करो और भूल जाओ। अगर नेकी करके भूलना सीख जाओगे तो तुम्हरी राह आसान बन जाएगी। मंजिल तुम्हारा इंतजार नहीं करेगी, वह स्वयं तुम्हारे पास आ जाएगी। अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए यही एक सरल उपाय है। दृढ निश्चय और नेक इरादे से जो कार्य करोगे उसमें तुम्हें सफलता जरूर मिलेगी और जो सफल हो जाता है उसकी जिन्दगी में खुशियों के अम्बार लग जाते हैं।

-हँसते-हँसते जीना सीखो, स्वेट मार्डेन से साभार

धर्मसंघों से आज्ञा बाहर एवं एकल विहारी संतों के प्रति संघ/समाज के दायित्व

प्रो. चाँदमल कर्णावट

धर्मसंघों से साधु-साध्वी का निष्कासन : एक आम समस्या

भौतिकता की भागदौड़ में आज धर्मक्षेत्र में मुनि दीक्षाओं का भी दौर तेज है। अलग-अलग सम्प्रदायों में बड़ी संख्या में दीक्षाएँ हो रही हैं। समारोहपूर्वक भारी उपस्थिति में दीक्षा समारोहों का आयोजन जन-जन में उल्लास भर देता है। परन्तु कुछ काल पश्चात् ही संयमी मुनि स्वयं संघ से निकल जाता है अथवा अनुशासनहीनता के कारण संघ द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है। इससे संघ/समाज में उदासी छा जाती है। संघ/समाज खेद और खिन्नता का अनुभव करता है। संघ से संत का निष्कासन अथवा आज्ञा बाहर करना भी समाज के लिए गंभीर चिन्ता का विषय है और चिन्तन का भी।

संघ-समाज का दायित्व

संघों द्वारा दीक्षा-समारोहों के आयोजन की तरह मुनियों के निष्कासन के पीछे भी संघ का दायित्व है। ऐसा प्रतीत होता है कि दीक्षा पूर्व एवं दीक्षा पश्चात् की अवधि में संघ-समाज अपने दायित्व का गंभीरता से अनुभव नहीं करता। क्या दीक्षा पूर्व दीक्षार्थी पर नजर व अंकुश संघ-समाज का दायित्व नहीं? अनेक संत-सती बताते हैं कि श्रावकों के निर्देशन से वे किस प्रकार संयम में दृढ़ रहकर आगे बढ़े हैं। दीक्षा पूर्व विरक्त भाई-बहनों के अध्ययन, दीक्षार्थ तैयारी एवं दीक्षा पश्चात् संयम दृढ़ता हेतु आवश्यक कर्त्तव्यों के प्रति संघों की उपेक्षावृत्ति का परिणाम मुनियों के निष्कासन का कारण बन जाता है। दीक्षा पूर्व एवं दीक्षा पश्चात् यदि संघ की नजर संयमी आत्माओं पर रहे तो निष्कासन की स्थितियाँ टल जाती हैं।

निष्कासन से पूर्व एवं पश्चात्

किसी भी संघ से संत विशेष के निष्कासन की स्थितियाँ अकस्मात् नहीं बनतीं। कुछ लंबे समय से उनकी प्रवृत्ति में बदलाव, साथी संतों एवं गुरुओं से टकराव, प्रायश्चित्त आदि की अवहेलना, बार-बार अवहेलना,

अनुशासन का अनुपालन नहीं किया जाना, जैसी स्थितियाँ बनती जाती हैं। प्रयास किया जाता है समस्या के समाधान का। परन्तु यह प्रयास गंभीरता से नहीं होता। इसे आचार्य के कार्यों में हस्तक्षेप माना जाता है। यह उचित नहीं । ऐसी स्थिति में निष्कासित किये जाने वाले संत से पूछताछ, उनकी समस्या को समझना आदि कार्य श्रावकप्रमुख भी कर सकते हैं। वे संघ के आचार्य को भी घटनाक्रम की जानकारी कर स्वविवेक से सम्बन्धित सन्त को समझाने का प्रयास कर सकते हैं। संबंधित संत को भगवान के छंद निरोध के संदेश (छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं) को बताना, अनुशासन की अनिवार्यता को उनके समक्ष रखना आवश्यक है। समाज की निर्णायक स्थिति इस समय अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। श्रावक संघ के आग्रह अनुरोध पर निष्कासित किए जाने वाले संत भी ध्यान दे सकते हैं और कठिन समस्या का समाधान भी निकल सकता है।

निष्कासित एकल विहारी संतों के साथ व्यवहार

किसी संत के अनिवार्य निष्कासन से पूर्व और पश्चात् समाज के कुछ महत्त्वपूर्ण घटक समुदाय उनके पक्षधर बन जाते हैं। क्या ऐसा करना गलत प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना नहीं माना जायेगा? उन्हें निष्कासन पूर्व अपना मंतव्य आचार्य भगवन्त एवं संघ के पदाधिकारियों के समक्ष रखना चाहिए। कुछ लोगों के उनका पक्षधर बन जाने से संघ एकता को कितना गहरा धक्का लगता है। यह हम सभी के लिए गंभीर चिन्तन का विषय है।

संघ में विघटन उत्पन्न हो, ऐसे व्यक्ति तीर्थंकर भगवान के संदेशानुसार महामोहनीय कर्म के भागी होते हैं। एकल विहारी संतों के विचरण की भगवान की आज्ञा नहीं है। सूत्रकृतांग सूत्र के अनुसार एकलविहारी मुनि में ८ गुण का होना आवश्यक है। जिसमें ८ पूर्वों का ज्ञान, कषाय की कमी और गुरु की आज्ञा आवश्यक बताई है। आचारांग सूत्र ५/५ के अनुसार वय एवं सूत्रादि में अपरिपक्व, अव्यक्त कच्चे साधक को बिना गुरु के नहीं रहने का निर्देश है। ये सभी बातें निष्कासित मुनि एवं संघ समाज दोनों के हित में हैं। यह जानते हुए और इसका अनुपालन करते हुए एकल विहारी संत का चातुर्मास कराना कहाँ तक उचित होगा? क्या यह तीर्थंकर भगवान की आज्ञा का उल्लंघन नहीं होगा? क्या यह अनुशासन हीनता को प्रोत्साहन देना नहीं माना जाएगा? ऐसे संतों को आहार-पानी देने की (अनुकंपा भाव से) मनाही नहीं, परन्तु इससे आगे बढ़कर उनके चातुर्मास कराना भी उचित नहीं माना जा

सकता।

धर्मसंघ में संयम और आत्मानुशासन ही आधार है। जो संत भगवदाज्ञा और गुरु आज्ञा में न रह सके, क्या वे आत्मानुशासन में रह पायेंगे? आज्ञा बाहर सन्तों को अपने आत्मकल्याण/आत्मोद्धार का चिन्तन करते हुए इस पर गंभीरता से विचार करने हेतु नम्र निवेदन। संघ-समाज के ऐसे घटकों से भी विनम्र अनुरोध कि वे संबंधित मुनि के संयम एवं अपने दायित्व पर पुनः विचार करें। धर्मक्षेत्र और समाज का वातावरण शुद्ध बना रहे, इसी में हम सबका गौरव है, ऐसा चिन्तन करें। *-३५, अहिंसापुरी, उदयपुर (राज.)*

सम्पादकीय का शेष...

कई संत मंत्र-तंत्र आदि के प्रयोग द्वारा लोगों को आकर्षित करते हैं और स्वार्थवश लोग भी उनके पास जाने में रुचि रखते हैं, वे कभी हाथ देखकर भविष्य बताते हैं तो कभी धन का नुस्खा बताने लगते है, किन्तु धर्म एवं अध्यात्म की दृष्टि से इस प्रवृत्ति को कदापि उपादेय नहीं माना जा सकता।

श्रमण-श्रमणी का जीवन तप, संयम, सहिष्णुता, क्षमाभाव और पंच महाव्रतों के निरतिचार पालन से दीप्तिमान होता है। उनका जीवन समत्व की साधना का आदर्श होता है, जो साधु-साध्वी संसार से अनासक्ति का उपदेश ही नहीं देते, आचरण भी करते हैं तथा आगन्तुकों की समस्याओं का समाधान प्रभु की वाणी के आचरण में बतलाते हैं, उनकी प्रतिष्ठा न चाहते हुए भी स्वतः होती है। श्रावक-श्राविकाओं को चाहिए कि वे श्रमण-श्रमणियों की साधना में सहायक बनें। उनके संयम को पतित करने तथा आचार-पालन में उन्हें शिथिल बनाने में निमित्त न बनें। श्रावक-श्राविका तो साधु-साध्वियों के माता-पिता के तुल्य होते हैं, जो उनके आचार की रक्षा का ध्यान रखते हैं तथा साधना में उपस्थित कठिनाइयों का निवारण करते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि साधु-साध्वी स्वाध्याय के माध्यम से अपने ज्ञान के प्रकाश में अपना निरीक्षण कर निर्दोषता की ओर बढ़ें। स्व-अनुशासन के अमोघ सूत्र को जीवन में स्थान दें। संघनायक या गच्छनायक को कहीं कहने या टोकने की भी स्थिति उत्पन्न न हो। इससे श्रमण-श्रमणियों को तो आनन्द का अनुभव होगा ही, साधना का उच्चतर स्वरूप भी अभिव्यक्त होगा। जिससे श्रावक-श्राविकाओं में भी प्रेरणा का दीपक जल सकेगा। आचार की दृष्टि से जैन श्रमण-श्रमणियों का आचार उच्चकोटि का है जिसमें व्यवहार और परमार्थ दोनों को शुद्ध रखने पर बल दिया गया है।

जैन पुराणों में सामाजिक सौहार्द

कु. अंजना बैराठी

ज्ञान से आलोकित आचार्यों के ओजस्वी स्वर पुराणों में सिमटे हुए हैं। जैन 'आदि पुराण' के रचयिता आचार्य जिनसेन के अनुसार प्राचीन आख्यानों को पुराण कहते हैं।[1] पुराण को इतिहास, इतिवृत्त और ऐतिह्य भी कहा है।[2] पुराण को सत्कथा की संज्ञा भी दी गयी है तथा ऐसी कथा के सात अंग बताये हैं वे हैं- द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, महाफल और प्रकृत।[3] पुराणों में तिरेसठ शलाका पुरुषों का वर्णन आता है, जिसमें चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण मान्य हैं।[4] इन महापुरुषों के जीवनवृत्त में उनके पूर्वभवों का उल्लेख भी पुराणों में हुआ है। जिसमें उनकी धार्मिक-अधार्मिक, नैतिक-अनैतिक भावनाओं का प्रदर्शन और शुभ-अशुभ भावनाओं से उत्पन्न पुण्य-पाप फल भी दर्शाये गये हैं। यह भी स्पष्ट बताया गया है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष श्रेष्ठ है।

पुराण सांस्कृतिक चेतना के भी प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं। पुराणों में व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों के विकास पर भी ध्यान दिया गया है। इसी का नाम है- संस्कृति। राष्ट्रकवि डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने जिन्दगी के तरीकों को ही संस्कृति कहा है।[5] डॉ. मंगलदेव शास्त्री सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा करने वाले आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति कहते हैं।[6] मानवता के कल्याण के लिए भगवान् ऋषभदेव द्वारा दिये गये उपदेश आज भी परिवार विघटन, शोषण, साम्प्रदायिक विद्वेष, आतंकवाद के बढ़ते प्रभाव, पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में उतने ही सक्षम एवं प्रासंगिक हैं जितने पुरातन काल में थे क्योंकि प्रत्येक अतीत से वर्तमान उपजता है, वर्तमान भविष्य का सर्जक है। आज दिग्भ्रांत युवा पीढ़ी एवं समाज को जैन धर्म की प्राचीनता, प्रासंगिकता, सामाजिक व्यवस्था एवं वैज्ञानिकता का ज्ञान कराने में पुराण साहित्य सक्षम है।

समाज की प्रथम इकाई परिवार होती है, यहाँ परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों पर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डाला जा रहा है।

संतान का माता-पिता से संबंधः- पद्मपुराण के अनुसार परिवार के सदस्यों के पारिवारिक संबंध अच्छे होने चाहिए। पद्मपुराण से ज्ञात होता है कि परिवार क़ा स्वामी वयोवृद्ध सदस्य या पिता होता था। संतान आज्ञाकारी होती थी। माता-पिता की कीर्ति का बहुत ध्यान रखा जाता था। पद्मपुराण में कैकयी जब वन में जाकर राम को वापस अयौध्या लौटाने का यत्न करती है तब राम कहते हैं- पिताजी ने जो वचन कहे थे उन्हें परिवार के सभी सदस्यों को पूरा करना चाहिए, अन्यथा पिताश्री का यश कम होगा।[७] जैन पुराणों के अनुसार पुत्र माता-पिता को सम्मान देता था। पिता दशरथ कैकेयी को वर देते समय उलझन में फँस जाते हैं तब उनके पुत्र रामचन्द्र कहते है संतान को वही कार्य करना चाहिए जिससे माता-पिता को किंचित भी शोक न हो।[८] विजयाभिगमन के अवसर पर लव और कुश माता को प्रणाम कर मंगलाचारपूर्वक घर से निकलते हैं।[९]

भाई का भाई से संबंध :- भाई-भाई के प्रति अनूठे प्रेम का उदाहरण भी पद्मपुराण में लक्ष्मण के चरित्र में मिलता है, जो बिना ऊहापोह किये बड़े भाई के साथ वन जाने की तैयारी करते हैं और कहते हैं "बड़े भाई और पिताजी ही यह कार्य उचित है या अनुचित, इसे अच्छी तरह जानते हैं, मैं तो उत्तम कार्य करने वाले भाई के साथ जा रहा हूँ।"[१०] कहीं-कहीं स्वार्थवश इसके अपवाद भी मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए आदिपुराण में भरत तथा बाहुबलि का युद्ध। भरत ने पूरी पृथ्वी पर राज करने की इच्छा से अपने छोटे भाई बाहुबलि पर चक्र चलाने का प्रयास किया।[११] दोनों भाइयों के बीच दृष्टि युद्ध, जल युद्ध हुआ। पाँच सौ पच्चीस धनुष ऊँचे शरीर वाले बाहुबलि ने जब पाँच सौ धनुष शरीर वाले भरत को उठाया तब मन में वैराग्य का विचार आते ही ससम्मान भरत को नीचे उतारा और दीक्षा के लिये चल दिये। दीक्षा लेते समय बाहुबलि ने एक वर्ष का उपवास किया था।

पति-पत्नी का संबंध :- पति से ही स्त्री की शोभा नहीं थी, बल्कि पति भी स्त्री से शोभित होता था।[१२] आदिपुराण में वर्णित है कि अतिबल नृपति मनोहरा रानी को प्राप्त कर कृतार्थ हो गया था। पति-पत्नी हृदय से एक-दूसरे को प्रेम करते थे, किन्तु गृहस्थ जीवन में पति-पत्नियों के बीच कलह भी होता था।[१३] पुराण के अनुसार जब स्त्रियाँ रूठ जाती थी तब पति उन्हें मनाते थे, जिससे

दाम्पत्य जीवन में सरलता, सरसता और सहजता उत्पन्न होती थी।[१४] पति के भटकने पर पत्नी पति को कुमार्ग से भटकने से बचाने का सदैव प्रयास करती थी। सीता का अपहरण करने पर मन्दोदरी (रावण की पत्नी) ने रावण को अच्छे-बुरे का भेद समझाया।[१५] पति अपने बाहुबल से स्त्री के भरण-पोषण के साथ-साथ उसका संरक्षण भी करता था।[१६]

माता-पिता का संतान से संबंध :- संतान को माता-पिता सुशिक्षित और योग्य बनाते थे। महाबल अपने पुत्र की शिक्षा का समुचित प्रबंध करता है। पुत्र भी पूरे मनोयोग से विद्याओं को ग्रहण करता हैं।[१७] आदिप्रभु ऋषभदेव ने भी पुत्र-पुत्रियों को शिक्षित बनाया। उन्हें शिक्षा का महत्त्व समझाते हुए कहते हैं- विद्या ही आत्मकल्याण वाली, साथ जाने वाली, समस्त जनों को प्रिय सिद्ध करने वाली होती है।[१८] ऋषभदेव भगवान् ने कन्याओं को अक्षर विद्या और अंक विद्या सिखलायी थी।[१९] पुत्रों को अर्थशास्त्र, संगीतशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वविद्या, रत्नपरीक्षा एवं शस्त्रविद्या की शिक्षा दी।[२०] कन्या जन्म को माता-पिता अभिशाप नहीं मानते थे।[२१] कन्याओं का लालन-पालन एवं उनकी शिक्षा-दीक्षा भी पुत्रों के समान ही होती थी।[२२] कन्या के वयस्क होने पर माता-पिता को उनके विवाह की चिन्ता होती थी और वे अनुरूप योग्य वर की तलाश कर विवाह सम्पन्न करते थे। पुत्र का विवाह होने पर माता सबसे अधिक प्रसन्न होती थी।[२३] आदिपुराण में वर्णित है कि मरुदेवी व वसुन्धरा पुत्रवधुओं को प्राप्त कर अत्यधिक खुश हुई। नवीन वधुओं के आते ही सासू अपना उत्तरदायित्व पूर्ण पद सौंप देती थी और जिन दीक्षा ग्रहण करने में ही जीवन की यथार्थता समझती थी।[२४]

स्त्री का स्त्री से संबंध :- उस समय स्त्रियों में सहयोग और सहकारिता की भावना सर्वाधिक थी। नारी को नारी के ऊपर अटूट विश्वास था, इसलिए नारी अपनी सहायता के लिए पुरुषों की उपेक्षा नहीं करती थी।[२५] स्त्री ही विपत्ति से स्त्री का उद्धार कर सकती है।

स्त्रीणां विपत्प्रतीकारे स्त्रियः एवावलम्बनम्[२६]

आदिपुराण के अनुसार श्रीमती पति की खोज के लिए पण्डिता नामक सखी से सहायता माँगती है। विपत्ति में पड़ी नारी नारी की मदद का पूरा प्रयास

करती है।

जहाँ आज का इंसान भौतिक संसाधनों की दृष्टि से भारी प्रगति की ओर अग्रसर है, वहीं आध्यात्मिक क्षेत्र में वह बहुत पीछे चला गया है। पुराणों में वर्णित सामाजिक संबंध सम्पूर्ण विश्व के लिये उज्ज्वल प्रकाश है। आचार्यों द्वारा लिखित शिक्षाएँ मानवता के कल्याण के लिए हैं, उनके उपदेश आज भी परिवार के विघटन को रोकने में सक्षम एवं प्रासंगिक हैं।

संदर्भ

१. आदि पुराण १/२१
२. आदि पुराण १/२४-२५
३. आदि पुराण १/१२२-१२५
४. आदि पुराण १/१९-२०
५. संस्कृति के चार अध्याय, प्रथम सस्करण पृ. ६५३
६. समाज और संस्कृति, अमर मुनि, पृ. ३६
७. पद्मपुराण ३२/१३१
८. पद्मपुराण ३१/१२६-१२७
९. पद्मपुराण १०१/३७
१०. पद्मपुराण ३१/१९८-१९९
११. आदिपुराण ३६०/९३
१२. आदिपुराण ६/५९ व ४/१३२
१३. आदिपुराण २७/१३२
१४. आदिपुराण १९/९४-९५
१५. पद्मपुराण ७३/५१,५२
१६. आदिपुराण ४३/११
१७. आदिपुराण ४/१३६-१४०
१८. आदिपुराण १६/९९-१०१
१९. आदिपुराण १६/१०५-११६
२०. आदिपुराण १६/११९-१२५
२१. आदिपुराण ६/८३
२२. आदिपुराण १६/९८
२३. आदिपुराण १५/७३
२४. आदिपुराण १५/७४ या ७/२०३
२५. आदिपुराण ६/१६६
२६. आदिपुराण ६/१६९

-शोधछात्रा, जैन अनुशीलन केन्द्र, १६४६-चौड़ा रास्ता, जयपुर

जम्बूकुमार

जैनदिवाकर श्री चौथमल जी म.सा.

पूर्ववृत्तः-मनुष्यगति, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम की दुर्लभता का विवेचन करते हुए जम्बूकुमार पद्मश्री को बोध देने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु पद्मश्री असमय में अबला स्त्रियों का परित्याग करना न्याय संगत नहीं बताती। तब जम्बूकुमार नारी को सबला और शक्ति के अक्षय भण्डार की स्वामिनी बताकर स्वाधीन सुख को वास्तविक सिद्ध करते हैं और आगे संयम की पुष्टि करते हुए कहते हैं-

---

प्राप्त सुखों को छोड़कर अप्राप्त सुखों के अभिलाषी होना तभी अनुचित हो सकता है जब वह अप्राप्त सुख भी प्राप्त सुख के समान हो। पर मेरा लक्ष्य अक्षय, अव्याबाध सुख प्राप्त करने का है अतएव पद्मश्री! तुम्हारा कथन मुझे उपयुक्त नहीं लगा।

पद्मश्री- नाथ! यदि आप अपना आग्रह न त्यागेंगे तो आपको उस बन्दर की तरह पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

जम्बूकुमार- कौनसे बन्दर की तरह?

पद्मश्री- सुनिये। एक सघन वन था। वह भाँति-भाँति के फल-फूलों वाले वृक्षों से व्याप्त था। उस वन में अनेक प्रकार के पक्षी और बन्दर रहते थे। उसमें जगह-जगह पानी के कुण्ड भी बने हुए थे। एक बार देववाणी हुई कि इस समय जो तिर्यंच पानी के कुंड में गिरेगा वह मनुष्य हो जाएगा और जो मनुष्य होगा वह देव बन जाएगा।

एक वानर-वानरी के जोड़े ने यह आकाशवाणी सुनकर सोचा- "यह सुअवसर फिर हाथ आना कठिन है। अतएव इसे हाथ से जाने देना ठीक नहीं है। मनुष्य बन जाएँगे तो जीवन सार्थक हो जाएगा।" यह सोचकर वानर-वानरी दोनों जल के कुण्ड में कूद पड़े। कुण्ड में कूदते ही बन्दर २२ वर्षीय नवयुवक और वानरी अष्टादश वर्षीय सुन्दर नवयुवती बन गई। मनुष्य अपने सद्भाग्य की सराहना करता हुआ पत्नी से बोला- 'प्रिये! अब भी समय है। पशु से मनुष्य बन गए हैं तो दूसरी बार डुबकी लगाकर मनुष्य से देव भी बन सकते हैं? चलो जल्दी करो, देव-देवी बन लें

अभी हमारे पास न कपड़े लत्ते हैं, न आभूषण हैं और न विशिष्ट शक्ति है। देव बन जाने पर अनायास ही सब वस्तुएँ प्राप्त हो जायेंगी। स्त्री को अपने पति का यह लोभ पसन्द नहीं आया। उसने कहा-

"प्रिय! अधिक लोभ, लाभ के बदले हानि देकर जाता है। पशु से मनुष्य बन जाना कम लाभ नहीं है। कृपा कर इतने में संतोष कीजिए। वस्त्राभूषण धीरे-धीरे मिल जाएँगे। उनके लिए इतनी व्यग्रता नहीं करनी चाहिए।'''

मनुष्य बने वानर ने कहा- तुम पगली हो अपने हिताहित का तुम्हें भान नहीं। आकाशवाणी की सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण विद्यमान होने पर भी उसमें संदेह कर रही हो। जब बन्दर से मनुष्य हो गए तो मनुष्य से देव बनने में क्या देरी लगेगी? स्त्रियाँ स्वभाव से ही ढीली और आलसी होती हैं। बातें करते-करते की सारा अनमोल समय बिता दोगी तो सदा के लिए पश्चात्ताप रह जाएगा। अतः मेरी बात मानो, विलम्ब न करो।

स्त्री-"प्राणनाथ! अब भी आपकी बात मेरे गले नहीं उतरती। मेरी तो यही प्रार्थना है कि संसार में संतोष ही सार है। असंतोषी कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। अब कृपा कर इस झंझट में न पड़िए। जो मिला है वही बहुत है।"

पुरुष- "फिर वही पिष्टपेषण! ऐसे दुर्लभ अवसर का सदुपयोग न करना मूर्खता है। मैं इस मूर्खता का शिकार नहीं बनूँगा। तुम मेरे साथ डुबकी मारो तो अच्छा है, अन्यथा मैं कूदता हूँ और अभी देव बनता हूँ। मेरे देव बन जाने पर तो तू कूद कर देवी बनेगी न? या फिर भी संदेह करती बैठी रहोगी।'

इतना कहकर वह धमाक से कुण्ड में कूद पड़ा। पर वह देव के बदले पहले सरीखा वानर बन गया। चौबेजी छब्बे बनने गए थे पर दुब्बे ही रह गए। वानर अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए अपनी पत्नी से कहने लगा- कुबुद्धि और लोभ का मारा मैं देव बनने गया था, पर हाय! मनुष्य भी न रह पाया। तेरी बात मान ली होती तो अच्छा होता। सच है- **'लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः?'** अर्थात् भाग्य में जो कुछ लिखा है उसे कौन मिटा सकता है। आज मैंने जान लिया कि असंतोष परम दुःख है, असंतोष सुख का विनाशक है, पर प्यारी! अब क्या तुम भी मुझे त्याग दोगी? हम लोग चिरकाल के साथी हैं। हमारा-तुम्हारा विछोह होना उचित नहीं है। अतएव आओ, तुम भी कूद पड़ो। पुनः हमारा-तुम्हारा जोड़ा बन जाएगा। क्या तुम मुझे नहीं चाहती ?

स्त्री ने मनुष्य शरीर पाकर तिर्यंच बनने से इन्कार कर दिया और कहा- ''क्या तुम मुझे बुद्धिहीन समझते हो कि मैं जानबूझकर बन्दरी बनूँगी? मैंने बहुतेरा समझाया-बुझाया था, पर तुमने मुझे मूर्ख मानकर मेरी बातों पर कान नहीं दिया। अब मैं तुम्हारी बातों पर ध्यान नहीं दूँगी। अपनी करनी का फल तुम्हीं भोगो। इतना कहकर वह एक झाड़ के खोतर में अपनी लज्जा बचाने के लिए छिप गई।

इतने में वहाँ एक राजा निकला। वह उस सुन्दरी को देखकर बोला- आप कौन हैं? यहाँ इस दशा में रहने का क्या कारण है?

स्त्री-मैं एक अबला हूँ। अपनी कहानी फिर सुनाऊँगी, पहले तन ढँकने को एक वस्त्र दे दीजिए।

राजा ने दुशाला उतार कर फेंक दिया। स्त्री ने दुशाले से अपना शरीर ढँक लिया और वह राजा के सामने आई।

अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाया तो राजा आश्चर्यान्वित हो गया। उसने कहा- तुम अकेली हो मनुष्य के रूप में अभी इस संसार में अवतीर्ण हुई हो, संसार का तुम्हें अनुभव नहीं है। अतएव मेरे साथ चलो। तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा।

राजा का कथन सुनकर उसे अच्छा आश्वासन मिला और वह राजा के साथ चल दी। बन्दर यह सब देखकर अपना माथा ठोककर रह गया। वह शोक के सागर में डूब गया। मनुष्यता से हाथ धो बैठा था, अब स्त्री से भी हाथ धो बैठा।

इधर एक मदारी बन्दर की खोज में घूम रहा था। इस बन्दर को चुपचाप बैठा देखकर उसने पकड़ लिया। कुछ दिनों मारपीट कर उसे खेल सिखाए। मदारी उसे नाच-नचाकर, लोगों को तमाशा दिखाकर अपनी आजीविका चलाता था। बन्दर मदारी के इशारों पर नाना प्रकार की चेष्टाएँ लोगों के मनोरंजन के लिए करता था। इस प्रकार घूमता-घामता मदारी एक बार उसी नगर में आ पहुँचा जहाँ उसकी स्त्री, रानी के रूप में मौजूद थी।

राजा अपनी नवीन रानी को बहुत चाहता था। उसने यह भी आदेश दे रखा था कि नगर में जो कोई नया खेल आवे वह सबसे पहले नई रानी साहिबा के सामने पेश किया जाए, तत्पश्चात् अन्यत्र दिखाया जाए। इस आदेश के अनुसार बन्दर के साथ मदारी रानी के सामने लाया गया। मदारी ने अत्यन्त सावधानी के साथ खेल आरम्भ किया। रानी साहिबा अपने महल के झरोखे में विराजमान थीं। ज्यों ही बन्दर की दृष्टि रानी पर पड़ी, वह एकदम उदास हो गया। उसे अपना सम्पूर्ण अतीत,

वर्तमान की भाँति स्पष्ट दिखाई देने लगा। चिरकालीन जीवन सहचरी के साथ आनन्दपूर्वक व्यतीत किए हुए दिन सामने आ गए और उसके हृदय में मानो कील सी चुभने लगी। बन्दर पूर्व घटनाओं के स्मरण में तन्मय हो गया। खेल करना भूल गया। बन्दर का यह हाल देखकर मदारी के क्रोध का पार न रहा। रानी के सामने मदारी की इस प्रकार भद्दी उड़े, यह उसे सहन न हुआ। इसके अतिरिक्त आजीविका का प्रश्न सामने था। उसे जान पड़ा जैसे आया हुआ सुयोग निकल रहा है। अतएव मदारी ने बन्दर को डण्डे लगाने शुरू किए फिर भी बन्दर आज नाचने को किसी प्रकार भी तैयार न हुआ।

रानी को भी यह दृश्य देखकर अपने अतीत का अस्पस्ट-सा प्रतिभास होने लगा। उसे जान पड़ा शायद यह वही मेरा पूर्व जीवन का साथी है। हाय कितने कष्ट में है। इसका उद्धार करना मेरा पवित्र कर्तव्य है। इस प्रकार सोच कर रानी ने अपनी दासी से कहला भेजा- ''मदारी! बन्दर को तंग न करो। उसे मारना व्यर्थ है। सौ रुपये ले जाओ और यह बन्दर मुझे दे जाओ।''

मदारी जो चाहता था, उसे उससे बहुत अधिक मिल गया और आशातीत सफलता मिली। वह बन्दर रानी को सौंप कर और रुपये लेकर प्रसन्नतापूर्वक चला गया। रानी ने बन्दर को अपने सोने के पलंग के पाये से बाँध दिया। बन्दर रानी के समीप रहकर एक ओर से शान्ति और दूसरी ओर से अशान्ति का तीव्र अनुभव करने लगा।

रोज-रोज के नाच और लोगों के मनोरंजन करने से एवं मदारी की मार खाने से पिंड छूटने के कारण उसे शान्ति थी, किन्तु राजा रानी के पारस्परिक स्नेहपूर्ण संवाद सुनकर उसके हृदय में तीव्र अग्नि सुलग उठती थी। ऐसे समय में रानी उसे अत्यन्त प्रेम के साथ सान्त्वना भी देती और भाग्य की महिमा का बखान करती। कभी-कभी वह लोभ के कारण अपनी बात न मानने के दोष बतला कर यह समझाती- ''देखो, संसार का कोई भी प्राणी पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं है। जो जितने अंश में असंतुष्ट है वह उतने ही अंश में दुःखी है। अतएव सुख के साधन संतोष को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। जो महानुभाव अपनी प्रत्येक परस्थिति में संतुष्ट रहता है। दूसरी परिस्थिति के लोभ का संवरण करता है, उसे दुःख का स्पर्श नहीं हो सकता। मेरी यह बात तुमने पहले मानी होती तो इतना कष्ट न उठाना पड़ता। अब भी यह बात मानो और जिस परिस्थिति में हो उसी में संतुष्ट रहो। सुख-शांति का

यही राजमार्ग है।

पद्मश्री ने जम्बूकुमार को यह दृष्टान्त देकर कहा- जीवनधन! इस दृष्टान्त के भाव पर विचार कीजिए। जैसे वानर-वानरी जंगल में रहते थे उसी प्रकार हम लोग संसाररूपी वन में निवास करते हैं। वानर-युगल आकाशवाणी सुन कर जैसे जल के कुण्ड में कूद कर पशु से मनुष्य हो गया था उसी प्रकार हम लोग गुरु महाराज की पवित्र वाणी सुनकर सुकृत रूपी कुण्ड में कूद कर मनुष्यभव प्राप्त कर सके हैं। इसके बाद लोभ में पड़कर बन्दर जैसे देव बनने के लिए अपनी पत्नी के निषेध करने पर भी कुण्ड में कूद पड़ा, उसी प्रकार आप हमारे निषेध करने पर भी लोभ के वश होकर साधुवृत्ति रूपी कुण्ड में कूदने के लिए तैयार हो रहे हैं। ध्यान रखिए, अन्त में जैसे बन्दर को आजीवन पश्चात्ताप करना पड़ा उसी प्रकार कहीं आपको भी पछताना न पड़े। आपके लिए अब भी विचार करने का अवसर है। इसी कारण हमारा अत्यन्त नम्रतापूर्ण अनुरोध है कि आपको जो कुछ प्राप्त हो गया है उसी में संतोष करना चाहिए। **(क्रमशः)**

(पद्मश्री बन्दर के उदाहरण द्वारा जम्बूकुमार को समझाने का प्रयत्न करती है, प्रत्युत्तर में जम्बूकुमार उसे किस प्रकार से समझाते हैं, पढ़िए अगले अंक में)

चलो सफर यह जिन्दगी का शान से हम तय करें

श्री मोहन कोठारी 'विनर'

चलो सफर यह जिन्दगी का, शान से हम तय करें।
मानवता की सेवा करके, पुण्य से झोली भरें।।

भाग्य से मिला हमें, चाह से ज्यादा मिला,
आया अवसर हाथ में है, व्यर्थ में न तू गंवा।
बहुत दुःखी जहान में, सुख को बाँटते चलें।।१।।

मुफलिसी की मार में, लाखों लोग जी रहे,
भाग्य के मारे हुए, गम के आँसू पी रहे।
इनके मन के सपनों को, कुछ तो हम पूरा करें।।२।।

भाग्य की ही बात है, कोई अमीर कोई गरीब,
किसने देखा खोलकर, अपना अपना यह नसीब।
अपने धन असबाब का, हम गुमान न करें।।

-स्टेशन रोड़, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

दशवैकालिक सूत्र का जानें हम मर्म(१०)

प्रश्न२३. कतिपय साधनापरक वाक्य लिखे जा रहे हैं, इनको इंगित करने वाले सूत्र, गाथा(कहीं गाथा तो कहीं उसका चरण)लिखकर इनकी व्याख्या कीजिये-

(१) प्राप्त विवेक के प्रकाश में स्खलनाओं (दोषों) को देखना/चिन्तन करना।

उत्तर- दशवैकालिक चूलिका २ गाथा १२, १३ **"किं मे परो पासइ, किं व अप्पा? किं वाहं खलियं न विवज्जयामि?"** अर्थात् आत्मार्थी मुनि शांत चित्त से रात्रि के प्रथम और अंतिम प्रहर में अंतर की गहराई में डूब एकांत में केवल अपने आप से वार्तालाप करने के पश्चात् एकाग्र होकर विचार करें कि मैं अपने गृहीत व्रतों, नियमोपनियमों तथा संयमाचार की मर्यादाओं से स्खलित होता हूँ, तब स्व-पर पक्ष के लोग मुझे किस दृष्टि से देखते हैं तथा इस आत्मकल्याण के पक्ष से स्खलित होने पर क्या मैं स्वयं अपना अंतर्निरीक्षण करता हूँ? यह कार्य करना मेरे लिए उचित नहीं है, क्या मैं इस प्रकार से विचार करता हूँ? और अपनी भूल या स्खलना को छोड़ देता हूँ? अथवा कौनसी ऐसी स्खलना या त्रुटि है, जिसे मैं छोड़ नहीं रहा हूँ? मेरी असमर्थता का क्या कारण है? इस प्रकार से साधु-साध्वी प्रतिदिन नियमित रूप से अपना अन्तर्निरीक्षण करे। आत्म निरीक्षण का वास्तविक अर्थ अपने पर अपना नेतृत्व करना है। उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन १ गाथा १६- **'अप्पा चेव दमेयव्वो'** अपनी वर्तमान वस्तु स्थिति का यथेष्ट और स्पष्ट परिचय प्राप्त करना आत्म निरीक्षण है।

(२) प्रायश्चित्त द्वारा चित्त की शुद्धि हो जाने पर ही व्रती का जीवन प्रारम्भ होता है?

उत्तर- **'तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि...वए उवट्ठिओमि'** अध्ययन ४

सच्चा व्रती एवं त्यागी वही है जो सर्वथा निश्छल होकर अभिमान, दम्भ एवं भोगासक्ति से परे होकर अपने स्वीकृत चारित्र में लगे दोषों को स्वीकार करता है। उनका यथाविधि प्रतिक्रमण करता है, आलोचना करता है,

प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्धि करने के लिये सदा तत्पर रहता है। दोष निकालने लगे तो निर्दोषता दूर नहीं रहती। की हुई भूल को न दोहराना ही प्रायश्चित्त कहलाता है।

उत्तराध्ययन २९वें अध्ययन में प्रायश्चित्त से पापकर्मों की शुद्धि होना बतलाया है। प्रायश्चित्त के तीन रूप हैं- आलोचना, निंदना, गर्हणा। जब भी साधक देश-संयम या सर्व-संयम ग्रहण करते हैं तो "तस्स भंते...." बोलकर ही व्रत ग्रहण करते हैं। सामायिक-साधना प्रारम्भ करने से पहले भी इच्छाकारेणं का पाठ इसी बात का प्रतीक है। आलोचना, प्रायश्चित्त से सरलता आती है। सरलता आने से ३ शल्य दूर होते हैं। ठीक तभी से व्रती का जीवन प्रारम्भ होता है- निःशल्यो व्रती।

(३) दोषकाल में दोषों को देखकर तत्काल लगाम खींचने वाला निर्दोष बन जाता है।

उत्तर- दशवैकालिक चूलिका २, गाथा १२, १३, १४ निर्दोष न बनने का एकमात्र कारण यह है कि हम दोषकाल में दोषों को नहीं देखते। यदि दोषकाल में दोषों को देख लिया जाए तो दोष की प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती। किन्तु जब दोष कर चुकते हैं, तब निर्दोष काल में अपने को दोषी मानकर दोष का चिन्तन करते रहते हैं, दुःखी होते रहते हैं।

"दोष देखना एवं त्वरित दोष जानना" ही निर्दोष बनने का कारण है। दोषकाल में दोषों को देखने से आत्मशक्ति एवं स्वकर्त्तव्य का भान होता है, भ्रम का पर्दा दूर होता है, आलस्य एवं प्रमाद के स्थान पर पुरुषार्थ एवं आत्म-जागरण बढ़ता है तथा पाप-मल दूर होने से निजात्मा की शुद्धि होती है, आत्मशक्ति बढ़ती है और अन्त में संसार की जन्म-मरण परम्परा से मुक्ति मिलती है। आत्म निरीक्षण के पश्चात् मनुष्य अपनी भूल को सुधारने के लिए प्रयत्नशील होता है। अत्यन्त सावधानी से अपनी सूक्ष्म भूल का भी विचार करने से भविष्य में किसी प्रकार का दोष न लगाने या वैसी भूल पुनः न करने की सावधानी रखता है।

'अणागयं पिंडबंधं न कुज्जा' अर्थात् वह अपने दोषों को तत्काल सुधारने में लग जाए। भविष्य पर न टाले कि मैं इस भूल को कल या परसों सुधार लूँगा। मन, वचन व काया से जिस किसी विषय में अपने आपको

कुमार्ग पर जाता हुआ देखे, तब धैर्यवान साधक तुरन्त अपने आपको पीछे हटाले, शीघ्र ही स्वयं संभल जाए। जिस प्रकार जातिमान घोड़ा लगाम खींचते ही विपरीत मार्ग से पीछे हट जाता है, संभलकर सन्मार्ग पर चलने लगता है, उसी प्रकार दोषकाल में दोषों को देख तत्काल लगाम खींचने वाला साधक एक दिन निर्दोष बन लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। स्खलित होना बुरा है, किन्तु उससे भी बुरा है, स्खलित होकर फिर संभलने की चेष्टा न करना।

प्रभु महावीर का एक ही घोष, देखो अपना-अपना दोष।। (क्रमशः)

सभी बड़ों से लें आशीष

डॉ. दिलीप धींग

रोज सुबह झुकाएँ शीश।
सभी बड़ों से लें आशीष।।

आशीर्वाद से शक्ति मिलती,
मन को सच्ची शान्ति मिलती।
फलती अभिलाषाएँ सारी,
दिल में नहीं रहती है टीस।।१।।

विनय हमारा धर्म-मूल है,
सद्गुणों का महकता फूल है।
प्यार अपार मिलेगा हमको,
यदि कभी हम करें न रीस।।२।।

विनयवान आगे बढ़ता है,
सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ता है।
चहुँ ओर चमकता जैसे,
श्याम निशा में हो रजनीश।।३।।

फलदार वृक्ष झुक जाते,
जल भरे बादल झुक जाते।
जो झुकता उसके आगे भी,
सभी खड़े रहते नत शीश।।४।।

-बम्बोरा, उदयपुर (राज.)

महावीर का श्रावक धर्म बनाम आज का श्रावक

श्री पदमचन्द गाँधी

आज चारों ओर भोगवाद की अंधी दौड़ में मानव अत्यधिक बहिर्मुखी हो गया है, जिससे प्रतिपल, प्रतिक्षण उसके अन्तर्मानस में तनाव उत्पन्न हो रहा है। वह भौतिक सुखों की प्राप्ति हेतु वैभव का अम्बार लगा कर शान्ति को ढूँढता है फिर भी उसके मन में अशांति की ज्वालाएँ धधकती हैं। मस्तिष्क में मानसिक तनाव का विस्फोट होने लगता है, जिससे छुटकारा पाने के लिए 'ड्रग्स' का उपयोग करता है तथा अपनी मौत को आमंत्रित करता है। मानसिक तनाव-मुक्ति हेतु तीर्थंकर भगवन्तों ने 'साधना' का मार्ग बतलाया है। साधना के लिए दो प्रकार के साधक बतलाए हैं जिनमें पहला 'श्रमण' है जो सांसारिक प्रपंचों एवं आरम्भ-परिग्रह से मुक्त होकर साधना करता है जिसे अणगार धर्म का साधक भी कहते हैं। दूसरे प्रकार के साधक को 'श्रावक' कहा गया है जो 'आगार धर्म' के अनुसार घर में रहकर साधना करके तनाव मुक्त होता है। जैन धर्म श्रमण प्रधान रहा है। श्रमण पंच महाव्रतधारी होते हैं तथा इनकी उपासना करने में जो तल्लीन रहता है वह 'श्रमणोपासक' अर्थात् 'श्रावक' कहलाता है। यदि वैदिक साहित्य को देखें तो स्पष्ट होता है कि वहाँ पर 'गृहस्थ धर्म' प्रधान व सर्वोपरि है। जैन धर्म में श्रावक का स्थान श्रमण के बाद में आता है जो श्रमण की प्रथम सीढ़ी का कार्य करता है। श्रावक धर्म का निरूपण विस्तार से उपासकदशांग सूत्र में किया गया है। इसके पश्चात् चिन्तकों ने उसे अधिक व्यवस्थित रूप दिया है।

श्रमण भगवान् महावीर की अनेकान्तवादी विचारधारा और जैन दर्शन को स्वामी समन्तभद्राचार्य ने 'सर्वोदय तीर्थ' कहा है तथा दिगम्बर मतानुसार श्रावक धर्म के लिए आचार संहिता का निर्माण किया है। श्रावक के लिए पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत तथा चौदह नियम का निर्धारण किया गया, जिनका अनुसरण करने पर श्रावक त्यागी एवं विरागी होता हुआ वीतराग होने का पथ प्रशस्त करता है तथा अपनी साधना द्वारा श्रमण होने की तैयारी करता है इसीलिए 'श्रावक' को २१ गुणों से सुशोभित स्वीकार किया गया है। श्रावक

गृहस्थ में रहकर भी त्यागी एवं व्रती होता है। पद व सत्ता उसे सम्मोहित नहीं करती। वह किसी को बाधित नहीं करता, अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करता। लेकिन आज के वर्तमान समय के श्रावक किसी से छुपे हुए नहीं हैं। वे पदलोलुप एवं अपने सम्मान के लिए सजग और लालायित रहते हैं। वे आज सामाजिक, धार्मिक एवं दान देने जैसे कार्यों में भी अपना स्वार्थ एवं हित सोचते हैं। वे धर्म को भी तराजू में तोल कर अपने को मिलने वाले लाभ का चिन्तन करते हैं। वे साधु-संतों की सेवा में भी अपना हित खोजते हैं। ऐसे श्रावक श्रेष्ठ श्रावक की गिनती में भी आते हैं।

वह राष्ट्र एवं समाज धन्य होता है जहाँ महावीर के सच्चे श्रावक उसके नागरिक होते हैं, क्योंकि वे अपनी स्वतंत्रता के लिए सचेत होने के साथ-साथ दूसरों की स्वतंत्रता के लिए भी संवेदनशील होते हैं, लेकिन वर्तमान में दूसरा किस प्रकार पराधीन हो तथा किस प्रकार उसकी स्वतंत्रता बाधित हो, ऐसा विचार किया जाता है। क्योंकि ऐसा करने से ही वे स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध कर सकते हैं। अपनी बातों को किस तरह मनवाया जाय, इसके उपाय ढूँढते हैं।

श्रावक धर्म की व्याख्या में लिखा है कि श्रावक अतिचारी, अविचारी, मायाचारी और कपटाचारी नहीं होता है, वह मिथ्या दोषारोपण नहीं करता है, किसी की चुगली एवं निन्दा नहीं करता है, झूठी शपथ नहीं खाता है, झूठे संकल्प नहीं लेता है। वह समाज में धर्म के नाम पर विवाद उत्पन्न नहीं करवाता है, सम्प्रदाय को कट्टरवाद का जामा पहनाने का प्रयास नहीं करता है। श्रावक हमेशा क्रोध, मान, माया, लोभ एवं राग-द्वेष से अपने आपको बचाने का प्रयास करता है। लेकिन आज के इस कलियुगी वातावरण में ये बातें आम हो गयी हैं, सामान्य सी लगती हैं। यदि इन पर चर्चा की जाय तो कोई महत्त्व नहीं रहता है, क्योंकि 'अन अकाउण्टेड मनी' आसानी से दान में मिल जाती है, जिनसे आडम्बर एवं दिखावे की पूर्ति की जाती है। अतः इनकी चर्चा गौण हो जाती है। आज नाम एवं शान के लिए गैर कानूनी रूप से अर्जित धन का दान दिया जाता है उसी आधार पर श्रेष्ठ श्रावक का मापदंड निर्धारित किया जाता है। जो सबसे ज्यादा दान दे वह सबसे बड़ा श्रावक। अर्थात् कीचड़ में पाँव रखो फिर उसे धोओ। वास्तव में सच्चा श्रावक वह होता है जो अपने

जीवन के मापदण्ड स्वयं निर्धारित करता है तथा उसी परिधि में अपना जीवन जीता है। श्रावक व्यापार एवं व्यवहार के लिए भी अपनी निर्धारित मर्यादाएँ रखता है। वह भोजन, वस्त्र, अलंकार, भोग सामग्री इत्यादि का भी परिमाण निश्चित करता है। श्रावक सामायिक-स्वाध्याय तथा ध्यान द्वारा भाव एवं भाषा को शुद्ध करता है। वह अपनी शारीरिक क्रियाओं में भी सावधान होता है। त्यागी एवं व्रती साधु-साध्वियों को आहार देने में, उनकी सेवा में सत्संग एवं धर्म की दलाली करने में जरा भी संकोच नहीं करता।

ऐसा श्रावक गृहस्थ होकर भी संसारी आडम्बरों एवं प्रलोभन से अपने आपको बचाए रखता है, वह कामनाओं तथा वासनाओं से परे होता है। वह सदाचरण को धार्मिक एवं सामाजिक दायित्व मानकर चलता है। उसे सम्मान की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि त्याग एवं व्रत की प्रवृत्ति अपने आपमें एक सम्मान है। श्रावक एक सद्नागरिक होता है जिससे राष्ट्र एवं समाज को नाज होता है, क्योंकि सदाचरण की नींव का वह पत्थर होता है। सच्चा श्रावक 'सब एक के लिए एवं एक सबके लिए' सिद्धान्त पर चलने वाला होता है। वह 'सब मेरे लिए' पर नहीं चलता है।

श्रावक कभी भी धर्म और समाज की कीमत पर सुविधा का भोग नहीं करता। यदि वह करता है तो 'अतिक्रमण' कहलाता है। इन्हीं अतिक्रमणों से वर्ण, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, भाषा एवं मर्यादाओं की सीमाओं का संघर्ष होता है, विरोध होता है जो सबके लिए घातक सिद्ध होता है।

महावीर का सच्चा श्रावक समता के लिए होता है। वह समाज के लिए अपने कर्त्तव्यबोध के साथ-साथ दायित्वों को वहन करने वाला होता है, केवल अधिकारों का उपयोगकर्ता नहीं। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहने के साथ अन्य के अधिकारों के लिए भी सजग रहता है। वह अपने पुरुषार्थ से अर्जित धन और सम्पदा के लिए आकृष्ट नहीं होता है। श्रावक धर्म के अनुसार करों की चोरी करना अपराध है, लेकिन आज करों की चोरी को अपराध नहीं माना जाता, वह एक व्यवहार बन गया है। ऐसा धन समाज में 'विषम' स्थिति उत्पन्न करता है। चोरी का यह धन अनाचार है। श्रावक किसी भी स्थिति में अन्य की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाता है। अपने वैभव का प्रदर्शन नहीं करता है, क्योंकि वह जानता है कि असली वैभव 'चारित्र' है जो

स्वयं में व्यक्त होता है। श्रावक का जीवन व्यवहार विधि-विधान के अनुरूप होता है, निषेधात्मक नहीं होता है। व्यसनों से बचना, रात्रि-भोजन नहीं करना, माँस-मद्य, कंदमूल आदि का सेवन नहीं करना भी उसका विधायी आचरण है, बाधक नहीं। ये सभी उसके चारित्र के साथ जुड़े हुए हैं। वह अपव्ययी नहीं होता है। दैनिक चर्या में जल, वायु, अग्नि का भी अपव्यय नहीं करता है। इनका उपयोग सावधानीपूर्वक करता है। वह एक बूँद पानी भी व्यर्थ नहीं गँवाता है। यदि व्यर्थ करता है तो प्रायश्चित्त का कारण बनता है, लेकिन देखने में आता है कि कितना पानी कपड़े धोने, स्नान आदि में व्यर्थ चला जाता है, स्थिति सामान्य सी लगती है लेकिन पाप का भागीदार बन जाता है।

श्रावक सबके उदय एवं मंगल के लिए होता है क्योंकि श्रावक एक कमल की तरह होता है जो कीचड़ में रहकर भी उससे ऊपर उठता है तथा स्वच्छ एवं निर्मल होता है। इन्हीं कारणों से उसे इक्कीस गुणों से युक्त माना गया है। इसीलिए वह पूजनीय एवं वन्दनीय है तथा सच्चे अर्थों में महावीर का श्रावक कहलाने योग्य है। अतः स्पष्ट है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव से भले ही परिस्थितियाँ बदल जायें, लेकिन महावीर के सच्चे श्रावक अटल रहते हैं। व्रती एवं त्यागी बनकर वे श्रमण के उपासक कहलाते हैं।

-१२, रीटापार्क सोसायटी, सुजाता फ्लेट के पास, शाही बाग, अहमदाबाद

अच्छी चिकित्सा की आवश्यकता

श्री चंचलमल चोरडिया

वास्तव में जो चिकित्सा पद्धतियाँ शरीर को स्वस्थ, शक्तिशाली, ताकतवर, रोगमुक्त बनाने के साथ–साथ मन को संयमित, नियन्त्रित, अनुशासित और आत्मा को निर्विकारी, पवित्र एवं शुद्ध बनाती हैं– वे ही चिकित्सा पद्धतियाँ स्थायी, प्रभावशाली एवं सर्वश्रेष्ठ होने का दावा कर सकती हैं।

चिकित्सा पद्धति की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है, उसकी प्रभावशीलता, तुरन्त राहत पहुँचाने की क्षमता तथा दुष्प्रभावों से रहित स्थायी रोग–मुक्ति। इन मापदण्डों को जो चिकित्सा पद्धतियाँ पूर्ण नहीं करतीं, वे चाहे जितने विज्ञापन एवं प्रचार–प्रसार द्वारा दावें करें, जनसाधारण को मान्य नहीं हो सकती।

-चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर (राज.)

उपन्यास

सिद्धगिरि का यात्री

उपाध्याय श्री केवलमुनि जी म.सा.

घर में दो ही तो प्राणी थे- एक मोहन और दूसरी उसकी माँ। मोहन की आयु अभी १४ वर्ष ही थी। वह दुनिया के दाँव-पेचों से अनजान ही था, सरल था, छल-छद्म की तो बात बहुत दूर अभी वह व्यवहार कुशल भी न हो सका था। उम्र उसकी कच्ची थी।

माँ जानती थी कि कच्ची आयु में, बचपन और किशोर वय में दिये गये संस्कार स्थायी होते हैं, जीवन भर उन संस्कारों का प्रभाव रहता है। इसी कारण वह अपने पुत्र को अवकाश के क्षणों में उदारता, परोपकार संबंधी अच्छी-अच्छी बातें बताया करती थी। परोपकार और दयालुता की कहानियाँ सुनाया करती थी। वह चाहती थी कि उसका बेटा बड़ा होकर सज्जन पुरुष बने, नाम और यश कमाए, लोग उसे अच्छा कहें।

एक दिन दुलार से बेटे के सिर पर हाथ फिराते हुए माँ ने कहा- ''बेटा! संसार में परोपकार (दूसरों का भला करना) सबसे बड़ा काम है। देख, अपना पड़ौसी है न, किशनलाल वह कितना परोपकार करता है, तन-मन-धन से लोगों की सहायता करता है और लोग भी उसके गुण गाते नहीं थकते, जिधर भी जाता है, लोग उसका आदर करते हैं, सम्मान देते हैं। पीठ पीछे भी उसकी प्रशंसा की बातें करते हैं और सारा मौहल्ला उसके लिए आधी रात को काम आने को तैयार रहता है।

मोहन बोला- ''माँ! हम परोपकार कैसे कर सकते हैं? किशनलाल जी के पास तो पैसा है। हमारे पास पैसा कहाँ है? तुम दूसरे लोगों के यहाँ काम करती हो तब भी इतना ही मिलता है कि किसी तरह हम पेट भर सकें। परोपकार के लिए धन कहाँ से लायें?''

सच्चाई भी यही थी। मोहन की माँ गरीब थी- बहुत गरीब। मोहन के पिता का देहान्त हो चुका था। उन्होंने घर में कुछ छोड़ा ही नहीं था कि मोहन का पालन-पोषण हो सके और छोड़ता भी कहाँ से, ईमानदारी से मेहनत-मजदूरी करके जितना कमाता था उतने में तो तीन प्राणियों का पेट भी मुश्किल

से भरता था। इसलिए मोहन की माँ अन्य बड़े घरों में काम करने के लिए विवश थी, लेकिन उसका हृदय न विवश था, न संकुचित। उसमें उदारता-परोपकार आदि की भावना काफी थी और यही भावना वह अपने पुत्र में भरा करती थी। मोहन को समझाया उसने- बेटा! परोपकार धन से ही नहीं होता, तन से भी होता है। कहा है-

''मन से भला विचारना, तन से पर उपकार।''

वह कैसे हो सकता है माँ? बेटे ने माँ से पूछा।

माँ ने बताया- ''देख बेटा! कोई रोगी है, उसकी सेवा कर देना। किसी भूले-भटके को राह बता देना, वृद्ध-कमजोर जिनका शरीर शिथिल हो चुका है, काम में उनकी सहायता कर देना। क्या यह परोपकार नहीं है?''

ऐसी सहायता तो तुम इस गरीबी में भी प्रतिदिन किसी न किसी की करती ही रहती हो माँ। मोहन ने हँसकर कहा-

माँ भी हँस दी। बोली- बेटा! यह तो अपना कर्त्तव्य है, यह करना ही चाहिए। ऐसा सहयोग तो समाज में एक दूसरे के साथ सभी करते हैं। यदि न करें तो समाज की व्यवस्था कैसे चले? देख, तू यह कपड़ा पहनता है न? किसने बनाया?

दर्जी ने।

दर्जी को कपड़ा किसने दिया ?

तुमने दिया।

मैं कपड़ा कहाँ से लाई?

दुकान से

दुकान पर कपड़ा किसने दिया?

जुलाहे ने

जुलाहा को सूत कहाँ से मिला?

कातने वाली से।

और उसको सूत किसने दिया?

व्यापारी ने।

व्यापारी सूत कहाँ से लाया?

सूत कातने वालों से

उन्होंने किसान से कपास खरीदा और सूत काता। तो इन कपड़ों में किसान से लेकर दर्जी तक कितने लोगों का सहयोग मिला है? इसी प्रकार हमारे जीवन का हरेक ताना-बाना सहयोग के धागों से बना हुआ है, समझ गया बेटा! इन्हीं कार्यों को पारस्परिक सहयोग कहा जाता है।

मोहन ने जिज्ञासा की- "तो माँ परोपकार किसे कहते हैं? मैं तो इन्हीं कार्यों को परोपकार समझता था। लेकिन तुम इन्हें पारस्परिक सहयोग बताती हो।"

माँ ने परोपकार का स्वरूप समझाया - "बेटा! इस स्वार्थ भरी दुनिया में अधिकांश लोग स्वार्थी होते हैं। अपना ही स्वार्थ देखते हैं, उसी को आगे रखकर चलते हैं। ऐसे लोगों के लिए कहा जाता है-

मैंने पिया, मेरे बैल ने पिया, अब चाहे कुँआ ढह पड़ो।

ऐसे निपट स्वार्थी लोगों से यह दुनिया भरी है। इसीलिए परोपकार शब्द कहना सरल है, किन्तु करना कठिन है।" (क्रमशः)

स्वाध्याय-कुण्डलियाँ

श्री अनराज बोथरा

उत्तम नरतन पाय के, करिये आत्म-विकास,
ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय का, करते रहो अभ्यास।
करते रहो अभ्यास, तनिक आलस्य मत कीजे,
नियमित हो स्वाध्याय, ज्ञान की ज्योति जगीजे।
'अनराज' सद्ज्ञान बिन, वृथा जन्म कहाय,
प्रगति कुछ होवे नहीं, जो घाणी बैल चलाय।।

स्वाध्याय करते रहो, न हो शिथिल विचार,
ग्राम-नगर और शहर, होवे खूब प्रचार।
होवे खूब प्रचार, ज्ञान का बिगुल बजाओ,
चमके जैन समाज, दीप से दीप जलाओ।
'अनराज' सब दूर हो, मन के विषय-विकार,
ज्ञान सहित आचार से, होवे आत्म-उद्धार।।

-दीवानों की गली, घासमण्डी, जोधपुर

आओ मिलकर ज्ञान बढ़ाएँ

(काय स्थिति-६)

श्री धर्मचन्द जैन

प्र.२०८ एक समय की जघन्य कायस्थिति किन-किन जीवों की होती है?

उत्तर एक समय की जघन्य कायस्थिति निम्नांकित जीवों की होती है- १. मनयोगी २. वचन योगी की ३. स्त्री वेदी की ४. नपुंसक वेदी की, ५. लोभ कषायी की ६. सादि-सपर्यवसित अकषायी की ७. सास्वादन समकित की ८. वेदक (क्षायिक वेदक) सम्यक्त्व की ९. अवधि ज्ञानी की १०. मनः पर्यायज्ञानी की ११ विभंगज्ञानी की १२. अवधि दर्शनी की १३.संयत (साधु) की १४.सामायिक चारित्री की १५. छेदोपस्थापनीय चारित्री की १६. परिहारविशुद्धि चारित्री की १७. सूक्ष्म संपराय चारित्री की १८. यथाख्यात चारित्री की १९. छद्मस्थ अनाहारक की और २०. भाषक की।

प्र.२०९ मन योगी, वचन योगी की जघन्य काय स्थिति एक समय की क्यों मानी गई हैं?

उत्तर जब कोई जीव औदारिक काय योग से प्रथम समय में मन अथवा वचन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके दूसरे समय में उन्हें मन अथवा वचन के रूप में परिणत करके छोड़ता है और तीसरे समय में रुक जाता है अथवा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तब वह मनोयोग अथवा वचन योग में एक समय ही रहता है। इस कारण से मनोयोगी, वचनयोगी इन दोनों की जघन्य काय स्थिति एक समय की मानी गई है।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, तथा असन्नी, सन्नी पंचेन्द्रिय इन सबके पर्याप्त जीवों में वचन योग तथा सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त जीवों में मन योग पाया जाता है।

प्र.२१० स्त्रीवेदी तथा नपुसंक वेदी की जघन्य कायस्थिति एक समय की किस

अपेक्षा से समझना चाहिये?

उत्तर जब कोई स्त्रीवेदी उपशम श्रेणी करे। नवम गुणस्थान में अवेदी बन जाये। दसवें, ग्यारहवें गुणस्थान में अवेदी रहकर पुनः नौवें गुणस्थान में आये। नौवें गुणस्थान में स्त्रीवेद का उदय हो, एक समय स्त्री वेद में रहे और दूसरे समय में काल कर जाये तो पाँच अनुत्तर विमान में देव रूप में उत्पन्न होता है। अनुत्तर विमान में पुरुषवेद ही प्राप्त होता है। वहाँ स्त्रीवेद नहीं होता है। इस प्रकार से स्त्रीवेद की जघन्य कायस्थिति एक समय की होती है। नपुंसक वेदी की एक समय की जघन्य कायस्थिति भी स्त्रीवेदी के समान ही समझना चाहिये। स्त्रीवेद के स्थान पर नपुंसक वेद का उदय समझना चाहिये।

प्र.२११ लोभ कषायी की जघन्य कायस्थिति एक समय की किस अपेक्षा से बतलायी गई है?

उत्तर लोभ कषायी की जघन्य कायस्थिति एक समय की दो अपेक्षाओं से समझना चाहिए। **प्रथम**- जब कोई जीव उपशम श्रेणि करे, ग्यारहवें गुणस्थान में वीतरागी अकषायी होकर वहाँ से गिरकर दसवें गुणस्थान में आये, संज्वलन लोभ कषाय का एक समय वेदन (उदय) हो और काल कर जाये तो पाँच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होता है। पाँच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होते समय क्रोध, मान अथवा माया इन तीनों में से किसी एक कषाय का उदय रहता है, लोभ कषाय का नहीं, इस अपेक्षा से लोभ कषाय की जघन्य स्थिति एक समय होती है।

द्वितीय अपेक्षा से बिना श्रेणि के भी नीचे के गुणस्थानों में स्वभाव से ही लोभ का उदय जघन्य एक समय में बदल जाता है अर्थात् बिना श्रेणि वाला जीव भी क्रोध, मान, माया से लोभ कषाय में आया और एक समय रहकर काल कर गया। मरण व्याघात से भवान्तर में लोभ कषाय बदल गया। क्रोध, मान, माया में से किसी एक कषाय का उदय हो गया। मरण भी एक मोड़ है, अतः मृत्यु से लोभ कषाय बदल सकती है, अतः लोभ कषाय की जघन्य काय

स्थिति एक समय की होती है।

जीवाभिगम सूत्र में क्रोध, मान, माया इन तीनों क़षायों का अंन्तर जघन्य एक समय बतलाया है। अतः दूसरी अपेक्षा से लोभ कषाय की जघन्य कायस्थिति एक समय मानना अधिक उपयुक्त लगता है।

प्र.२१२ सादि सपर्यवसित अकषायी किसे कहते हैं?

उत्तर जिन जीवों के अकषायी बनने की आदि (शुरुआत) हो तथा अकषायी बनने का पर्यवसान (अन्त) हो, उन जीवों को सादि सपर्यवसित अकषायी जीव कहते हैं।

प्र.२१३ सादि सपर्यवसित अकषायी जीवों की जघन्य कायस्थिति एक समय की क्यों बतलायी गई है?

उत्तर पहले से दसवें गुणस्थान तक जीव सकषायी होते हैं। ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान वाले तथा सिद्ध भगवान् अकषायी होते हैं। उनमें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव सादि सपर्यवसित अकषायी कहलाते हैं, क्योंकि ग्यारहवाँ गुणस्थान प्रतिपाती है। इसमें रहा हुआ साधक या तो काल करता है या नीचे के गुणस्थानों में आता है। कोई उपशम श्रेणि वाला साधक ग्यारहवें गुणस्थान में जाये, एक समय रहे और काल कर जाये तो पाँच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होता है।

ग्यारहवें गुणस्थान में एक समय अकषायी रहा तथा दूसरे ही समय में क्रोध,मान अथवा माया में से किसी एक कषाय का उदय हो जाने से सकषायी बन गया,इस अपेक्षा से सादि सपर्यवसित अकषायी जीवों की जघन्य कायस्थिति एक समय की बतलायी गई है।

बारहवें से चौदहवाँ गुणस्थान क्षपक श्रेणी वालों को ही प्राप्त होता है। इनमें से जीव नीचे नहीं गिरता, वरन् उत्तरोत्तर आगे बढ़ता हुआ सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है, इस कारण से इन गुणस्थानों वाले अकषायी जीवों की जघन्य कायस्थिति एक समय की न होकर अन्तर्मुहूर्त की होती है। सिद्ध बनने के बाद सिद्धपना कभी भी नहीं छोड़ते, अतः उनकी कायस्थिति सादि अपर्यवसित होती है।(क्रमशः)

-रजिस्ट्रार, अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कहाँ नहीं हैं महावीर....?

श्री चन्द्रेश भंडारी

महावीर ने धर्म के लिये
सब कुछ छोड़ दिया
और हमने धन के लिये
महावीर को सब जगह जोड़ दिया
हर जगह महावीर नाम की धूम है,
और धर्म को धन से जीतने का जुनून है ।।
अरे! हम महावीर के सच्चे अनुयायी हैं,
कैसे उन्हें भूल सकते हैं?
इसीलिये तो हर जगह
महावीर का नाम रख दिया है,
और धर्म को जन से जोड़ दिया है ।।
महावीर धर्मशाला है,
महावीर युवक संघ है,
महावीर मिष्ठान्न भंडार है
और महावीर भोजनालय भी है,
महावीर मार्केट है और
महावीर कपड़ाघर है।
और शायद भविष्य में महावीर फैशन मॉल भी नजर आ जाए ।।
कहाँ नहीं है महावीर
हर जगह उसका नाम है
क्या, इसीलिए हम कह सकते हैं
कि हम महावीर के सच्चे अनुयायी हैं?
शायद नहीं, क्योंकि महावीर सब जगह हैं,
पर वहाँ नहीं हैं, जहाँ होने चाहिये।
क्या महावीर आपके मन और हृदय में हैं?
क्या महावीर आपके आचार और विचार में हैं?
बाहर की दुनिया में महावीर
खूब सजाये जा रहे हैं।

लेकिन भीतर का महावीर सुषुप्त है।
जैनियों उठो, चेतो, जागो
अब भी समय है
महावीर के विचारों को
बाजार में नहीं आचार में उतारें
महावीर को प्रदर्शन में नहीं
आत्मदर्शन में संवारें।।

-'ॐ शांति' ३४२-कमला नेहरू नगर, जोधपुर

घाती-अघाती कर्मों के विपाक

श्री जशकरण डागा

एक राजा के सम्मुख तीन व्यक्तियों को नगर कोतवाल द्वारा उन्हें समुचित दण्ड देने हेतु प्रस्तुत किया गया। इन तीनों व्यक्तियों में प्रथम हत्यारा था, दूसरा पेशेवर चोर था तथा तीसरा ऐसा व्यक्ति था जो न्याय नीति से अर्जित आय को प्रतिमाह अनाथ, अपंग, दीन-दु:खियों के अभावों को दूर करने हेतु उनमें बाँट देता और जो थोड़ा बहुत बचता, उससे अपना व परिवार का गुजारा चलाता था।

राजा ने तीनों व्यक्तियों की जीवनचर्या व उनके कृत्यों और शिकायतों की पूरी जाँच पड़ताल की। राजा बड़ा न्यायप्रिय था। उसने अपना निर्णय देते हुए प्रथम व्यक्ति को फाँसी एवं दूसरे को आजीवन कारावास की सजा दी। किन्तु तीसरे व्यक्ति को उसके परोपकारी कार्यों से प्रभावित होकर, आजीविका की पूर्ति निमित्त एक जागीर देकर प्रशंसा पत्र दिया व ससम्मान उसको घर भेज दिया।

यह एक दृष्टान्त है। जिससे कर्मों के विपाक को ध्यान में लिया जा सकता है। चार घनघाती कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व अंतराय) प्रथम व्यक्ति (हत्यारे) के समान हैं जो अनंत आत्म गुणों की घात करते हैं। शेष चार अघाती कर्म (वेदनीय, आयुष्य नाम व गोत्र) दो प्रकार के होते हैं - शुभ व अशुभ। दूसरे व्यक्ति (चोर) के समान ये अशुभ कर्म हैं और तीसरे व्यक्ति (जिसे जागीर व सम्मान पत्र मिला) के समान शुभ कर्म जानने चाहिए।

उपर्युक्त प्रकार से घाती-अघाती कर्मों के विपाक को ध्यान में लेकर हमें सदा सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप तथा दान, शील, व उत्तम भावना आराधन में सम्यक् पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। *-डागा सदन, संघपुरा, पो. टोंक (राज.)*

प्रसन्नता का राजमार्ग : सकारात्मक सोच

श्री भागचन्द छाजेड़

जगत के सभी चराचर प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो चिन्तनशील होता है। चिन्तन दो तरह का होता है-शुभ और अशुभ। शुभ चिन्तन पुण्य का अर्जन और अशुभ चिन्तन पाप का बंधन कराता है। सुख-दुःख, धूप-छाँव व रात-दिन के समान हैं। ज्ञानी पुरुष अनुकूल प्रतिकूल प्रसंग पर सदैव समभाव में रहता है। वह अनुकूलता में लीन नहीं होता तथा प्रतिकूल प्रसंग पर दीन नहीं बनता। वह उसे अनुकूलता समझकर सुखी हो जाता है जैसे रामचन्द्र जी को राजतिलक की जगह वनवास मिला तो उनका चिन्तन चला- अच्छा हुआ मेरा कार्य भार हल्का हुआ। मेरे लघु भ्राता भरत भी सक्षम हैं, वे राज्य का संचालन व्यवस्थित ढंग से कर लेंगे और मैं वनवास जाऊँगा तो मुझे अनेक ऋषि-मुनियों के दर्शन का व सत्संग का लाभ मिलेगा तथा उनकी सेवा का शुभ अवसर प्राप्त होगा। यह चिन्तन सकारात्मक चिन्तन है, जो मन को स्वस्थ बनाए रखता है।

हम मन की दो अवस्थाओं में जीते हैं-स्वस्थ मानसिकता में और अस्वस्थ मानसिकता में। अस्वस्थ मानसिकता का अर्थ है नकारात्मक सोच। स्वस्थ मानसिकता का अर्थ है सकारात्मक सोच।

सकारात्मक सोच में शांति व समाधि रही हुई है। नकारात्मक सोच जलते हुए अंगारे के समान है, जो जीवन को अशांत व दुःखी बना देता है। पश्चिम दिशा में देखने वाले को सूर्य अस्त ही नजर आयेगा। अगर अपने मुख को पूर्व की दिशा में मोड़ दें तो सूर्योदय को देखा जा सकेगा, सिर्फ मुख को मोड़ने की जरूरत है अर्थात् अपनी सोच बदलने की आवश्यकता है। सकारात्मक सोच वाला जिन्दगी में कभी दुःखी नहीं होता है, उसके जीवन में सदैव प्रसन्नता रहती है। यदि बत्तीस दाँतों में से एक दाँत टूट गया तो वह उसकी चिन्ता नहीं करता है वह सोचेगा मेरे पास अभी ३१ दाँत तो हैं। एक व्यक्ति दुर्घटना में अंधा हो गया, फिर भी वह यह सोचकर प्रसन्न रहता है कि अब शेष जीवन में बाह्य वस्तुओं को न देखने से अध्यात्म चिन्तन-मनन करने में सुविधा हो गई। इस प्रकार सकारात्मक चिन्तनशील व्यक्ति दुःख के प्रसंग में सुखी रहता है अर्थात् खटास में भी मिठास ढूँढ निकालता है।

निषेधात्मक विचार आज कितने घातक हैं, वर्तमान मनोविज्ञान ने इसे प्रमाणित कर दिया है। जब मन में किसी के प्रति बुरा भाव जागता है तो प्रतिरोधक शक्ति क्रमशः घटने लगती है। कहते हैं १६०० श्वेत कण समाप्त हो जाते हैं और जब किसी के प्रति शुभ भाव होते हैं तो प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है अर्थात् उसके १७०० श्वेत कण बढ़ जाते हैं।

निषेधात्मक चिन्तक दूसरे के प्रति सदैव आशंकित रहता है। सदैव किसी के प्रति शंका करने वाला अपने प्रति उस व्यक्ति को वैसा करने के लिये प्रेरित करता है। एक दिन वे तरंगें वैसा करवा लेती हैं। एक सेठ प्रतिदिन सोते समय यह सोचता है कि कहीं मेरा नौकर आये दिन होने वाली घटनाओं की तरह मेरी हत्या न कर दे, एक दिन वही घटित हुआ। अचानक नौकर के मन का दुर्भाव प्रबल हुआ कि विचारों की मादकता हाथों में उतर आयी, देखते-देखते उसने सेठ को मार दिया।

इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण- एक महिला की मृत्यु कैंसर की गाँठ से हुई। उसकी लड़की दिन में कई बार सोचती कि कहीं वैसी गाँठ उसके पेट में न हो जाय। हर महीने चैकअप करवाती। डॉक्टर ने बहुत बार कहा कि कैंसर के साथ आनुवंशिक संबंध नहीं है, तुम इस नकारात्मक विचार को त्याग दो, पर विचार की पकड़ बड़ी भयंकर होती है, वह उस आशंका को छोड़ नहीं सकी, फलतः पेट में गाँठ हो गई।

सकारात्मक चिन्तन वाले व्यक्ति की दृष्टि सदैव वर्तमान पर टिकी रहती है। गीता सार में बताया गया कि व्यर्थ में क्यों चिन्ता करते हो, जो हुआ है अच्छा हुआ है, जो हो रहा है अच्छा हो रहा है, जो होगा वह भी अच्छा ही होगा।

जीवन में शुभ-अशुभ घटनाएँ अपने कर्मों के अनुसार उदय में आती है, दोनों परिस्थितियों में समभाव रखें, क्योंकि हर परिस्थिति स्थायी रहने वाली नहीं है, प्रतिकूल प्रसंग आये उसमें अपने उपादान का ही कारण समझें, निमित्त को दोष नहीं दें।

जो होता है वह अच्छे के लिये ही होता है। इसके संबंध में एक घटना इस प्रकार है- एक बार किसी वस्तु को काटते हुए राजा की अंगुली कट गई, पास में बैठे हुए मंत्री ने राजा को पीड़ित देखा तो तुरन्त अंगुली के मरहम पट्टी की और साथ में कह दिया-राजन्! क्यों चिन्ता करते हो, जो हुआ वह अच्छे के लिए हुआ है। किन्तु

राजा नकारात्मक दृष्टि वाला था, उसने उसे विपरीत समझा और मंत्री को अपने पद से हटा दिया। कुछ दिनों बाद राजा वन-भ्रमण हेतु जंगल की ओर निकल पड़ा। भ्रमण करते हुए जंगल में बहुत दूर चला गया। उसी जंगल में चोर पल्ली रहती थी। चोरों ने राजा को देखा तो उसे पकड़ कर अपने सरदार के पास में ले गए और कहा अपनी देवी के लिये बलि चढ़ाने में यह काम आयेगा। सरदार विचक्षण बुद्धि वाला था उसने राजा के शरीर के सभी अंग-उपांगों पर दृष्टि डाली और देखा कि उसके एक हाथ की अंगुली कटी हुई है। यह देखकर वह बोला- "यह व्यक्ति बलि चढ़ाने लायक नहीं है, अतः इसे मुक्त कर दिया जाय।" राजा जैसे-तैसे अपने राज्य में पुनः लौटा। आकर अपने पूर्व मंत्री से मिला और अपनी बीती घटना को सुनाया, मंत्री ने कहा जो होता है वह अच्छे के लिए ही होता है। यदि आप मुझे पद से मुक्त नहीं करते तो मैं भी आपके साथ चलता और मेरी बलि चढ़ जाती, क्योंकि मेरे शरीर का अंग-उपांग कटा हुआ नहीं था। चोर लोग तो मेरी ही बलि चढ़ाते, आपको छोड़ देते। राजा को जब यह बात समझ में आई तो बड़ा खुश हुआ और मंत्री को बंधनमुक्त कर पुनः मंत्री पद दिया।

अतः हम हमारे विचारों को सकारात्मक रखें। ये ही हमें सदैव प्रसन्नता, शान्ति एवं समाधि देने वाले हैं।

-फतेह मार्केट, ब्यावर (राज.)

सिरदर्द बना नेट

ज्यादा समय तक नेट पर चिपके रहने से सिरदर्द, बेचैनी, घबराहट या मोटापे की शिकायत होने लगती है। ऐसी शिकायत होने पर यह जानने की कोशिश की जाती है कि इंटरनेट की लत मनोरोग का रूप तो नहीं ले चुकी। ऐसा पाए जाने पर रोगी को दवा दी जाती है। इंटरनेट एडिक्शन से शारीरिक और मानसिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इंटरनेट एडिक्शन में १५ से ३० वर्ष तक के युवा अधिक होते हैं। मैंने भी हाल ही में चार-पाँच इंटरनेट एडिक्ट्स का उपचार किया है। मैं तो इंटरनेट यूजर्स से यही कहना चाहूँगा कि वे नेट पर वक्त दें लेकिन उसके आदी न बनें। *-ललित बत्रा, मनोचिकित्सक*

-राजस्थान पत्रिका दिनांक २१ जून २००६ के 'परिवार' से साभार

धर्म की राह पर

डॉ. राजेन्द्रमुनि जी म.सा.

बाल-स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित कहानी को पढ़कर अन्त में दिए गए प्रश्नों के उत्तर १० अगस्त २००६ तक श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, घोड़ों का चौक, जोधपुर-३४२००१ (राज.) के पते पर प्रेषित करें। श्रेष्ठ उत्तरदाताओं को **श्री महावीरचन्द जी बाफना, जोधपुर** द्वारा अपनी धर्मपत्नी स्व. श्रीमती मोहिनीदेवी जी बाफना की पुण्य-स्मृति में पुरस्कृत किया जा रहा है। **पुरस्कारों की परिवर्तित राशि निम्नानुसार है- प्रथम पुरस्कार-२५० रुपये, द्वितीय पुरस्कार-२०० रुपये, तृतीय पुरस्कार- १५० रुपये तथा १०० रुपये के पाँच सान्त्वना पुरस्कार। प्रतियोगिता में अब १० वर्ष से २१ वर्ष तक के छात्र-छात्रा भाग ले सकते हैं।**

जो चढ़ाव-उतार कोटीश्वर श्रेष्ठी हस्तिमित्र के जीवन में आया, ऐसा परिवर्तन प्रायः प्रत्येक के जीवन में आता रहता है। रात-दिन के आने-जाने का क्रम तो आता ही रहेगा। जो आज दुःखी है, कल वह सुखी भी होगा। धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बनने के चढ़ाव-उतार की जो शिक्षा श्रेष्ठी हस्तिमित्र ने ली, ऐसी शिक्षा लेने वाला तो लाखों में एक ही होता है।

मालव गंगा क्षिप्रा के तट पर बसी उज्जयिनी नगरी में अनेक श्रेष्ठी रहते थे, किन्तु हस्तिमित्र अपनी दानवीरता और धार्मिकता के कारण काफी लोकप्रिय थे।

श्रेष्ठी हस्तिमित्र के ऐश्वर्य को ऐसा ग्रहण लगा कि वे धनी से निर्धन बन गए। उनके पुत्र का लालन-पालन पाँच धाय माताएँ करती थीं, वही श्रेष्ठीपुत्र अब थोड़े से दूध के लिए तरसने लगा। लेकिन वह निर्धनता तीन साल से ज्यादा नहीं रही। तीन साल बाद उन्हें आशातीत लाभ हुआ और वे पुनः कोटीश्वर हो गए। लेकिन इस बदलाव ने उनके जीवन में वैराग्य भर दिया। एकान्त में बैठे वे यही सोचा करते थे- देखते-देखते ही मैं क्या से क्या हो गया। ऐसे अस्थिर संसार को त्यागने में ही भलाई है। मुझको अपना भविष्य ही देखना चाहिए, वह भविष्य जो मरने के बाद होगा। मेरा यह भविष्य महाव्रतों का पालन करने से अर्थात् संयम ग्रहण करने से ही बनेगा।

अपने मन की बात एक दिन श्रेष्ठी हस्तिमित्र ने अपने पुत्र से कही- "पुत्र! तू तो अब पूरी तरह समर्थ हो गया है। व्यापार भी तूने संभाल लिया है। मैं अब व्यापारादि से मुक्ति चाहता हूँ। मुझे तू भार मुक्त कर दे।"

यह तो मेरा सौभाग्य है पिताजी कि आप मुझे इस योग्य समझते हैं। पुत्र ने कहा- "आप अपना पूरा समय जैसे चाहें बितायें। व्यापार की आप तनिक भी चिन्ता न करें।"

श्रेष्ठीपुत्र पिता के कथन का अभिप्राय समझा नहीं था। इसीलिए उसने उनसे ऐसी बात कह दी थी। पिता-पुत्र के इस वार्तालाप को एक सप्ताह ही बीता था कि एक ज्ञानी मुनि श्रमणों के साथ उज्जयिनी पधारे। काफी लोग उनकी देशना सुनने राजोद्यान में गये। उज्जयिनी का राजा भी अमात्यों और राज परिवार के साथ मुनियों को वंदना करने पहुँचा। श्रेष्ठी हस्तिमित्र भी अपने पुत्र को लेकर मुनि देशना सुनने गया।

मुनि महाराज की वैराग्यभरी देशना सुनकर हस्तिमित्र पूरी तरह प्रतिबोधित हो गया। विशेष बात यह थी कि उसका पुत्र भी प्रतिबोधित हो गया। लेकिन पिता-पुत्र दोनों में से कोई किसी के मन का रहस्य नहीं जानता था। रहस्य तो तब खुला जब पिता हस्तिमित्र ने पुत्र से दीक्षा की अनुमति माँगी और कहा-

"पुत्र! तुझे याद होगा सप्ताह भर पूर्व तुमसे कहा था कि मैं व्यापारादि से मुक्ति चाहता हूँ। मुझे तू भार मुक्त कर दे। अब वह समय आ गया है कि तू मुझे दीक्षा की अनुमति दे। तूने भी मुझसे कहा था कि मैं अपना समय जैसे चाहूँ, वैसे बिताऊँ। तो मैं अब अपना शेष जीवन चारित्र का पालन करते हुए बिताना चाहता हूँ।"

"पिताजी, आज तो मैं भी आप से यही माँगने आया हूँ, जो आप मुझसे माँग रहे हैं। आप भी मुझे दीक्षा की अनुमति दीजिए।"

"पिताजी, मुनि महाराज ने कहा था कि हमारा जीवन पत्ते की नोक पर टिकी ओस की बूँद के समान है। वही बात मेरे मन में घर कर गई है। अच्छा हुआ मेरा विवाह नहीं हुआ, वरना बाधा खड़ी हो जाती।"

पुत्र की बात सुनते ही श्रेष्ठी हस्तिमित्र स्तब्ध रह गए। फिर वे पुत्र को ऊँच-नीच समझाने लगे। लेकिन पुत्र ने उनकी सभी बातें अस्वीकार कर कहा-

"आप दीक्षा लेना चाहते हैं, फिर भी पुत्र के प्रति मोह क्यों है? मैं दीक्षा न लेकर घर पर रहूँ, आपका यह सुझाव भी तो मोह से भरा है। क्या हमारे देश में बालकों ने चारित्र का पालन नहीं किया? क्या एवन्ताकुमार बालक नहीं थे? मुनि बनने का उम्र से कोई संबंध ही नहीं है। यह तो पुण्योदय का प्रताप है कि बालक भी दीक्षा लेने की भावना रखता है।"

आखिरकार पिता ने पुत्र को और पुत्र ने पिता को दीक्षा की सहमति-अनुमति प्रदान कर दी। दोनों मुनि बन गए। समयान्तर से दोनों मुनियों ने संघाचार्य के साथ उज्जयिनी से विहार कर दिया।

श्रेष्ठी हस्तिमित्र तो अब मुनि हस्तिमित्र हो गए और संघ के श्रमण उनके पुत्र को पुत्र मुनि के नाम से संबोधित करने लगे। पिता मुनि और पुत्र मुनि-दोनों ही नियम निष्ठा के साथ महाव्रतों का पालन करने लगे। मुनि हस्तिमित्र उग्र तप से अपने शरीर को कृश करने लगे। उनकी कठोर साधना से संघ के श्रमण प्रभावित थे।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक बार श्रमणसंघ वनमार्ग में भटक गया। जल्दी ही कोई बस्ती आते दिखाई नहीं दे रही थी। वन मार्ग में भूखे-प्यासे सभी मुनि समतापूर्वक चल रहे थे, पर मुनि हस्तिमित्र के पाँव लड़खड़ाने लगे। वे एकदम बैठ गए और आचार्य से बोले-

"गुरुदेव, मेरी शक्ति जवाब दे गई है। मुझ से अब पगभर नहीं चला जाएगा। आप मुझे संथारा दिलाइए।"

"धैर्य को मत त्यागो।" आचार्य ने कहा- "धर्म बिना धैर्य के नहीं चलता। उठो साहस करो। थोड़ी देर में कोई गाँव आ ही जाएगा।"

"गुरुदेव, जब मेरा अन्त ही आ गया है तो साहस और धैर्य भी साथ छोड़ गए हैं। मुझसे अब बोला भी नहीं जाता। आप संथारा कराइए।"

हस्तिमित्र मुनि ने गुरु द्वारा संथारा लिया और ध्यानस्थ हो गए। उन्होंने शुभ ध्यानपूर्वक देह छोड़ दी और मर कर देवलोक में देव बने।

संथारा दिलाने के बाद आचार्य तो श्रमणों को लेकर आगे चले गए थे, पर पुत्रमुनि हस्तिमित्र के पास ही रह गए थे। देवलोक में पहुँचने के बाद हस्तिमित्र मुनि ने देखा, पुत्र मुनि मेरी मृत देह के पास बैठा है। अपनी देह में

प्रविष्ट होकर मैं इसकी परीक्षा तो लूँ कि भूख से व्याकुल होकर यह धर्म को छोड़ता है या नहीं।

हस्तिमित्र मुनि की मृत देह में स्पन्दन होने लगा। मुनि ने पुत्र मुनि से कहा- "तुम भूख से व्याकुल हो। देखो इस वन में कैसे मधुर फल लगे हैं। जब देह ही नहीं रहेगी तो साधना कैसे करोगे। ये फल खाकर भूख शान्त करो।"

पुत्रमुनि ने आश्चर्य के साथ कहा-"आप मुनि होकर यह अनहोनी बात कैसे कहने लगे? जो आहार मुनियों के लिए स्वप्न में भी कल्पनीय नहीं है, उसी को करने का आप परामर्श दे रहे हैं?"

हस्तिमित्र मुनि की देह में स्थित देव ने पुनः कहा- "मुने, आपद्काल में देहरक्षा के लिए फलों का आहार लेने में कोई हानि नहीं है। बिना खाये तुम कैसे रह पाओगे?"

पुत्र मुनि ने कहा- "मुने! आप मुझे धर्मपथ से नहीं डिगा सकते। मैं प्राणान्त कर सकता हूँ, पर धर्म का त्याग नहीं कर सकता।"

देव ने देखा कि पुत्र मुनि भूख से पीड़ित और दुर्बल होते हुए भी धर्म से डिग नहीं रहे तो दूसरे उपाय से परीक्षा लेने का निश्चय किया। देव ने अपनी देवमाया से श्रावक-श्राविकाओं की सृष्टि की। वे सब पुत्र मुनि से आहार लेने की प्रार्थना करने लगे, लेकिन पुत्रमुनि के विवेक ने उनका साथ नहीं छोड़ा। उन्होंने सोचा कि इस वन में दूर-दूर तक कोई बस्ती नहीं है तो यहाँ श्रावक-श्राविका कहाँ से आ सकते हैं। यह निश्चय ही कोई देवमाया है। उन्होंने मायाजनित श्रावक-श्राविकाओं की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। अब देव ने पुनः एक गाँव की रचना कर दी। उसी गाँव के श्रावक मुनि से गाँव में चलने की प्रार्थना करने लगे। यह पुत्र मुनि की तीसरी परीक्षा थी। इसमें भी सफल रहे। उनके विवेक ने उन्हें बता दिया कि यह गाँव भी मायाजनित है।

हस्तिमित्र मुनि की देह में स्थित देव अपने दिव्य रूप में प्रकट होकर बोला- "मुनि आप धन्य हैं। भूख की असह्य वेदना को सहकर भी आपने धर्म नहीं छोड़ा। मैं धर्म के कारण ही तो मरकर देव बना हूँ। मैंने ही आपकी परीक्षा ली थी। आपकी नियम-निष्ठा को देखकर मैं बार-बार आपको वंदन करता हूँ।"

यह कह देव ने अपनी देवशक्ति से पुत्र मुनि को श्रमण संघ के पास

पहुँचा दिया। वहाँ आचार्य सहित सभी ने एक बस्ती में पहुँच करआहार ग्रहण किया।

प्रश्न

१. परिवर्तन का वह कौनसा क्रम है जो प्रत्येक के जीवन में आता है ?

२. श्रेष्ठी हस्तिमित्र ने अपने कौनसे भविष्य का चिन्तन किया ?

३. पुत्र के मन में कौनसी बात घर कर गई और उस बात का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा?

४. मुनि बनने के पश्चात् हस्तिमित्र ने किस प्रकार की साधना की?

५. भावार्थ बताइये-

(१) अस्थिर संसार को त्यागने में ही भलाई है।

(२) धर्म बिना धैर्य के नहीं चलता।

६. हस्तिमित्र मुनि मरकर क्या बने और उन्होंने अपने पुत्र की परीक्षा क्यों ली?

७. "मुनिपुत्र परीक्षा में खरे उतरे।" क्या आप इससे सहमत हैं? अपने उत्तर की पुष्टि में तीन तर्क दीजिए।

बाल-स्तम्भ [मई-२००६] का परिणाम

जिनवाणी के मई-२००६ के अंक में बाल-स्तम्भ के अंतर्गत 'परदेशी राजा' कहानी के प्रश्नों के उत्तर १८ बालक-बालिकाओं से प्राप्त हुए। प्राप्तांक २० में से दिए गए हैं। इस अंक की प्रतियोगिता के विजेता इस प्रकार हैं-

पुरस्कार एवं राशि	नाम	अंक
प्रथम पुरस्कार-२५०/-	हंसा गोखरू-मालपुरा	२०
द्वितीय पुरस्कार-२००/-	कमलेश कुमार जैन-पादरू	१९.५
तृतीय पुरस्कार- १५०/-	यशवंत गोलेछा-ब्यावर	१९
सान्त्वना पुरस्कार- १००/-	मीनाक्षी छाजेड़-समदड़ी	१८.५
	सिद्धार्थ जैन-मालपुरा	१८
	सौरभ भण्डारी-पीपाड़ शहर	१८
	शिल्पा बोहरा-रतकुड़िया	१८

भयानक मनोवृत्ति

आचार्य श्री विजयरत्नसुन्दरसूरि जी

"आप अपनी जिन्दगी के नब्बे वर्ष व्यतीत कर चुके हैं। इस जीवन में आपको अनेक प्रकार के अनुभव हुए होंगे। अनेक व्यक्तियों के साथ आपका परिचय है। इतनी लंबी जिन्दगी में आपको जो अनुभव हुए हैं उनका कुछ सार बतायेंगे?

"देखिए, आप सिंह को पाल सकते हैं।"

"ठीक है। और कुछ?"

"कोबरा सर्प को पालने में आपको सफलता मिल सकती है।"

"और कुछ?"

"अल्सेशियन या डोबरमेन कुत्ते को भी आप पाल सकते हैं।"

"और कुछ?"

"और कुछ नहीं, "किन्तु" पूछिए। मानव की जीभ का पालन (नियंत्रण)करना सर्वथा असंभव है। क्योंकि यह तो किसी भी समय फिसल जाए और वर्षों पुराने संबंधों को जहरीले बना दे, इसकी संपूर्ण संभावना है।

मनुष्य के जीवन-विकास में बाधक बनने वाली एक भयानक मनोवृत्ति यह है, "मन किसी की भी सुनने के लिए तैयार नहीं है" और स्वतः दुश्मन पैदा करने वाली दूसरी खतरनाक मनोवृत्ति यह है, "सभी को खरी-खरी सुनाने के लिए मन हमेशा तैयार रहता है।"

इन दो भयंकर मनोवृत्तियों के अधीन बन जाने वाला मानव अपने जीवन में जिस नुकसान को निमंत्रण दे बैठता है, इसे शब्दों में व्यक्त करना अत्यंत कठिन है। ऐसा मानव किसी की सुनने के लिए तैयार नहीं होता। इसलिए कोई उसे जीवन-विकास की या आत्महित की बातें नहीं कहता तथा वह सबको सुनाता ही रहता हैं इसलिए उसे दुश्मन ढूँढने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। "बाहरवाले तो उससे दूर रहते ही हैं एवं अपने भी पराये बन जाते हैं।" क्या आप ऐसे नुकसानों से अपने आपको बचाना चाहते हैं? तो दो कार्य करते रहिए। सबका सुन लेने के लिए तैयार रहिए और योग्य व्यक्ति के अलावा अन्य किसी को कुछ भी मत सुनाइए। मैत्री का पुल बनाने के लिए तत्पर ऐसे शब्दों को हम दुश्मनी की दीवार बना देंगे तो कैसे चलेगा। *-'कमाल' पुस्तक से साभार*

आधुनिक युग और जैन धर्म

मीनाक्षी जैन

विषमता से समता, दुःख से सुख और अशान्ति से शान्ति की ओर बढ़ने का मार्ग धर्ममूलक ही हो सकता है। लेकिन वर्तमान काल में सबसे बड़ा संकट यही है कि व्यक्ति धर्म को अपने लिए हितकारी न मानकर उसे मुखौटा मानने लगा है। धर्म मुखौटा तब बनता है, जब वह आचरण में प्रतिफलित नहीं होता। सिद्धान्त और व्यवहार का बढ़ता हुआ अन्तर व्यक्ति को अन्दर ही अन्दर खोखला बनाता रहता है। जब धर्म अपने ही दार्शनिक सिद्धान्तों से हटकर लीक पीटने वाली रूढि मात्र बन जाता है, तब धर्म के प्रति अरुचि होने लगती है। लोग उसे अफीमी नशा और न जाने क्या-क्या कहने लग जाते हैं। यह सही है कि इस धर्मोन्माद में बड़े-बड़े अत्याचार हुए हैं। धर्मियों को झूठा ही नहीं ठहराया गया, वरन् उन्हें प्राणान्तक यातनाएँ भी दी गईं है। जहाँ धर्म के नाम पर ऐसे अत्याचार होते हैं, धर्म के नाम पर सामाजिक ऊँच-नीच के विभिन्न स्तर कायम किए जाते हैं, धर्म के नाम पर भगवान के प्रांगण में न जाने, उन्हें छूने न छूने की प्ररूपणा की जाती है, उस धर्म से निश्चय ही आत्मदशा की कोई पहचान नहीं होती। धर्म के नाम पर पनपने वाली इस विकृति को देखकर ही कार्लमार्क्स ने धर्म को अफीम कहा। लेकिन सच्चा धर्म नशा नहीं है, वरन् वह तो नशे को दूर कर आत्मदशा को शुद्ध और निर्मल बनाने वाला है, सुषुप्त चेतना को जागृत करने वाला है, ज्ञान और आचरण के द्वैत को मिटाने वाला है।

आधुनिकता और वैज्ञानिक युग धर्म के लिए अनुकूल नहीं हैं, ऐसी विचारधारा निरा भ्रम है। धर्म अन्धविश्वास या अवसरवादिता नहीं है। कई लोकसम्मत आदर्श जीवन मिलकर ही धर्म का रूप खड़ा करते हैं। उसमें जो अवांछनीय रूढितत्त्व प्रवेश कर जाते हैं, आधुनिकता उनका विरोध करती है। आधुनिकता का धर्म के केन्द्रीय जीवन तत्त्वों से कोई विरोध नहीं है। आज के इस तेज रफ्तार युग में सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की ही है कि धर्म के केन्द्रीय जीवन-तत्त्व यथा इन्द्रिय-निग्रह, मैत्री, करुणा, प्रेम, सेवा, सहकार, स्वावलम्बन, तप, संयम, परोपकार आदि सुरक्षित रहें।

वर्तमान युग बौद्धिक विश्लेषण और तर्कजाल का युग है। वह श्रद्धा और आस्था के आधार पर टिके हुए शाश्वत आदर्शों को महत्त्व न देकर उन मूल्यों तथा तथ्यों को महत्त्व देता है, जो प्रयोग और परीक्षण की कसौटी पर खरे उतरते हैं। वह अतीतजीवी विश्वासों और अनागत आदर्श कल्पनाओं में न विचरकर वर्तमान जीवन की कठोरताओं और विद्रूपताओं से संघर्ष करने में अपने पुरुषार्थ का जौहर दिखाता है। वह इन्द्रियों और मन द्वारा प्रत्यक्षीकृत सत्य तथा भौतिक जगत् की स्थिति व अवगाहना में विश्वास करता है तथा त्रिकालवाही सत्यनिरूपण, परलोक संबंधी रहस्यात्मकता व ईश्वरवादिता को नकारता है। विज्ञान का चिन्तन ईश्वर जैसी किसी ऐसी अलौकिक शक्ति में विश्वास नहीं करता जो व्यक्ति के सुख-दुःख की नियामक हो और न ऐसे छायालोक में विश्वास करता है, जो इस पृथ्वी लोक से परे अनन्त सुखों की क्रीड़ा भूमि है। दूसरे शब्दों में विज्ञान यह स्वीकार नहीं करता कि मानव को कोई दूसरी शक्ति सुखी या दुःखी बनाती है और चूंकि तथाकथित धार्मिक परम्पराएँ मनुष्य के सुख-दुःख के लिए स्वयं मनुष्य को नहीं, वरन् ईश्वर नाम की किसी अन्य शक्ति को उत्तरदायी ठहराती रही हैं, इसलिए विज्ञान ने धर्म का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया।

भौतिकवाद के इस युग में बाह्य भौतिक साधन-सामग्री का बहुलता से अन्वेषण हुआ है। लेकिन ये भौतिक सुख-सुविधाएँ व साधन भी मनुष्य को किसी संतोषजनक साध्य की ओर ले जाने में सक्षम नहीं रहे। फलस्वरूप मानव पुनः अपने अतीत में कुछ खोजने को प्रेरित हुआ, जहाँ कम साधनों के बावजूद अधिक संतुष्टि एवं परिपूर्णता का जीवन था। इस जागरण में सांस्कृतिक धरोहर का पुनर्मूल्यांकन होने लगा। धर्म-दर्शनों में निहित तथ्यों और आदर्शों की समसामयिक संदर्भों में व्याख्या होने लगी। जर्मनी के प्राच्यविद्या विशारदों की दृष्टि भारत की इस मूल्यवान धार्मिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक निधि की ओर गई। मैक्समूलर और हरमन जैकोबी जैसे विद्वानों के नाम इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। जब जैन दर्शन से विद्वानों का संपर्क हुआ और उन्होंने अपने अध्ययन से यह जाना कि ईश्वर और परलोक को परे रखकर भी धर्म-साधना का चिंतन और अभ्यास किया जा सकता है, तो उन्हें धार्मिक सिद्धान्त तथ्यपूर्ण लगे। जैन धर्म की इस मान्यता में उनकी

विशेष दिलचस्पी उत्पन्न हुई कि ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता नहीं है। षड्द्रव्यों के संयोग से सृष्टि की रचना स्वतः होती चलती है यह एक गतिशील प्रक्रिया है। इस दृष्टि से सृष्टि का न आदि है न अंत है। यह अनादि अनन्त है। इसी प्रकार जीवों को सुख-दुःख कोई परोक्ष सत्ता नहीं देती है। जीव के स्वकृत कर्मों से ही उसे सुख-दुःख मिलते हैं। जीव किसी अन्य शक्ति अथवा ईश्वर पर निर्भर नहीं है। इस प्रकार जैन धर्म में आत्मनिर्भरता पर सर्वाधिक बल दिया गया है। सृष्टि रचना और ईश्वरत्व के रूप में अपने पुरुषार्थ-पराक्रम के बल पर मानव चेतना के चरम विकास (चेतना ऊर्ध्वीकरण) के सिद्धान्त ने धर्म और विज्ञान के अन्तर को कम कर दिया। आधुनिक विचारक धर्म और विज्ञान को एक दूसरे का विरोधी न मानकर पूरक मानने लगे हैं।

जैन दर्शन ने धर्म को किसी मत या सम्प्रदाय से न जोड़कर मनुष्य की वृत्तियों से जोड़ा और क्षमा, सरलता, विनम्रता, सत्य, निर्लोभता, त्याग, संयम, तप, ब्रह्मचर्य आदि की परिपालना को धर्म कहा। जो व्यक्ति धर्म की इस रूप में साधना करता है, वह देवता से भी महान् है। देवता भी उसे नमन करते हैं।

मनुष्य अपने पुरुषार्थ द्वारा अपनी विकृतियों पर विजय प्राप्त कर अपनी चेतना का सर्वोपरि विकास कर सकता है। मानव मन की विकृतियाँ हैं- क्रोध, मान, माया और लोभ। इन्हें कषाय कहा गया है। इन कषायों की जड़ है- इच्छा या कामना। ये इच्छाएँ कषायों में रूपान्तरित होती रहती हैं, जिससे चेतना का विकास संभव नहीं हो पाता। फलतः आत्मा की ज्ञान-दर्शन-चारित्र व सुख की शक्तियाँ दबी हुई रहती हैं। साधक अपनी साधना द्वारा कामनाओं पर नियन्त्रण करके आत्म अनुशासन द्वारा अपनी आत्म-शक्तियों को पूर्ण रूप से जागृत और विकसित कर सकता है। चेतना की इस पूर्ण विकसित अवस्था को ही केवलज्ञान तथा मोक्ष कहा है। यही वास्तविक स्वतन्त्रता है। इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए मनुष्य किसी अलौकिक शक्ति अथवा सत्ता पर निर्भर नहीं है। वह स्वयं इस अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम और स्वतंत्र है। जैन दर्शन में इस अवस्था को प्राप्त करने की प्रक्रिया को ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की सम्यक् आराधना द्वारा आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों को क्षय करने की साधना कहा है।

जैन दर्शन में धर्म के दो प्रकार प्रतिपादित हैं- अनगार धर्म अर्थात् मुनि धर्म तथा आगार धर्म अर्थात् गृहस्थ धर्म या श्रावक धर्म। मुनि धर्म वह है जिसमें साधक तीन करण, तीन योग से हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का आजीवन त्याग करता है अर्थात् मुनि इन पापकर्मों को मन, वचन और काया से न करता है, न दूसरों से करवाता है और न जो करते हैं उन्हें प्रोत्साहित करता है। वह पंच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) धारी होता है। गृहस्थ धर्म वह धर्म है जिसमें साधक (श्रावक) महाव्रतों की बजाय अणुव्रतों को धारण करता है। वह अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार स्थूल रूप से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करता है। गृहस्थ धर्म के आगे की सीढी है- अनगार धर्म। गृहस्थ धर्म के नियम अर्थात् बारह व्रत एक प्रकार से किसी भी देश के आदर्श नागरिक की आचार संहिता हैं।

जैन धर्म में शूद्रों एवं स्त्रियों को भी धार्मिक अधिकार दिए गए हैं। उन्हें अपने संघ में दीक्षित किया और बराबरी का स्थान दिया गया है। जातिवाद का खण्डन करके उद्घोष किया गया है कि किसी जाति विशेष में जन्म लेने मात्र से ही व्यक्ति ऊँचा अथवा नीचा नहीं हो जाता है वरन् व्यक्ति अपने कर्मों से महान् बनता है। जैन धर्म ने मानवीय मूल्यों एवं आत्मिक सद्गुणों के विकास को अधिक महत्त्व दिया है।

आधुनिक जीवन अधिक अशांत, संत्रस्त और कुंठित हो गया है। हिंसा, झूठ, चोरी, असंयम और परिग्रह की समस्या अधिक जटिल हो गई है। व्यक्ति का आत्मविश्वास डगमगाने लगा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के जीवन में सुख, शांति और संतुष्टि लाने के लिए जैन धर्म सबल मार्ग प्रशस्त करता है। जैन धर्म विश्व के सर्वाधिक प्राचीन धर्मों में से है। अन्य कई धर्म काल-प्रवाह में विलीन हो गए, लेकिन जैन धर्म की अविच्छिन्न धारा आज भी अविरल रूप से प्रवाहमान है और उसमें निहित जीवन-मूल्यों के प्रतिनिधि चतुर्विध संघ- श्रमण, श्रमणी, श्रावक-श्राविका रूप से विद्यमान हैं। इससे यह स्पष्ट है कि जैन धर्म में ऐसे सार्वभौमिक, सार्वकालिक तत्त्व हैं, जो सदियों पूर्व ऋषभदेव से महावीर के काल में भी उतने ही महत्त्वपूर्ण थे और आज के वैज्ञानिक युग में भी उतने ही प्रासंगिक तथा उपयोगी हैं।

-शोधकर्त्री, जैन अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

विवेक

श्री श्रीकृष्णमल लोढ़ा

हेयोपादेयज्ञानं विवेकः। हेय अर्थात् छोड़ने योग्य और उपादेय यानी ग्रहण करने योग्य का बोध विवेक है। दूसरे शब्दों में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का भेद 'विवेक' ही बतलाता है। इसलिये विवेक में धर्म निरूपित किया गया है -

'विवेगे धम्ममाहिए'

विवेकदृष्ट्या चरतां जनानां।
श्रियो न किंचित् विपदो न किंचित्॥

जो मानव विवेक पूर्ण आचरण करता है उसके लिये न तो कोई संपत्ति है और न विपत्ति। विवेक दृष्टि रखने वाले के लिये संपत्ति हर्ष देने वाली नहीं होती है और न ही विपत्ति दुःख का कारण बनती है। विवेकशील मनुष्य दोनों ही अवस्थाओं में तटस्थ भाव रखता है।

'विवेकधाराशतधौतमन्तः' अर्थात् विवेक की सैकड़ों धाराओं से अन्तःकरण निर्मल होना चाहिए। बहुत से व्यक्ति पंडित, महात्मा और महाज्ञानी बनकर वाद-विवाद, तर्क-वितर्क और शास्त्रार्थ कर सकते हैं, परन्तु विवेक के अभाव के कारण जीवन सफल नहीं कर पाते। विवेक को तो प्रथम गुरु माना गया है-**"विवेको गुरुवत्सर्वं कृत्याकृत्यं प्रकाशयति।"**

गुरु के समान विवेक समस्त प्रकार के कृत्य और अकृत्य को प्रकाशित कर देता है।

विवेक अच्छे-बुरे की पहचान करता है और बुरे को छोड़ कर अच्छा स्वीकार करने की सलाह देता है। विवेक मनुष्य की अन्तर आत्मा में जगता है। अन्तर-आत्मा की आवाज विवेक है।

जिज्ञासु गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से दैनिक क्रियाओं के संबंध में प्रश्न किया-

कहं चरे, कहं चिट्ठे, कहमासे, कहं सए।
कहं भुंजंतो, भासंतो, पाव कम्मं न बंधइ॥

हे भगवन्! चलना-फिरना, खाना-पीना, उठना-बैठना आदि क्रियाएँ अनिवार्य हैं। ये क्रियाएँ किस ढंग से की जायें, जिससे पाप कर्म से बचा जा

सके। भगवान ने उत्तर दिया-

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो, भासंतो, पावकम्मं न बंधइ॥

विवेकपूर्वक चलने, खड़ा रहने, बैठने, सोने, आहार करने एवं बोलने से जीव पापकर्म का बंध नहीं करता है।

जैन धर्म पुरुषार्थवादी धर्म है। यह प्रत्येक क्षेत्र में विवेकपूर्वक कार्य करने का निर्देश देता है और जो मनुष्य विवेकपूर्वक कार्य करता है वह कर्म बंध नहीं करता है।

'जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा।'

अगर साधक की विवेक दृष्टि जागृत है तो वह कर्म के आस्रव के कारणों को भी संवर एवं निर्जरा के कारण बना सकता है और यदि विवेक की तराजू उसके हाथ में नहीं है तो कर्म-निर्जरा के कारण भी उसके लिये आस्रव के कारण बन जाते हैं।

विवेकपूर्वक प्रवृत्ति को भगवान् महावीर ने साधु के लिए समिति कहा है। समिति के रूप में प्रवृत्ति की जाएगी तो बंध रोके जा सकेंगे।

चाणक्य नीति में कहा गया है-

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणा यान्ति मनोज्ञताम्।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम्॥

विवेकी पुरुष के गुण सोने से जड़े हुए रत्न की तरह अधिक सुन्दर दिखाई देते हैं।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि का कथन है-**"विवेकिनां विवेकस्य फलं ह्यौचित्यवर्तनम्।"** विवेक का फल है कि विवेकी पुरुष औचित्य के अनुसार व्यवहार करता है।

मनुष्य को कोई काम करने से पहले अपने मन में चार प्रश्न करना चाहिए- क्यों? किसलिये? कैसे? और क्या? इन प्रश्नों का सही उत्तर सोचकर जो कार्य किया जायेगा वह कार्य अधिकतर दुःखदायी नहीं होगा। विवेक ने जिस कार्य को हरी झण्डी दिखाई हो, वह काम अवश्य किया जा सकता है। यही उसकी आत्मा की आवाज है।

औपपातिक सूत्र में कथन है-

धम्मं णं आइक्खमाणा तुब्भे उवसमं आइक्खह।

उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह॥ *-औपपातिक सूत्र ५८*

प्रभो! आपने धर्म का उपदेश देते हुए उपशम का उपदेश दिया और उपशम का उपदेश देते हुए विवेक का उपदेश दिया। अर्थात् धर्म का सार उपशम भाव है और उपशमभाव का सार है- विवेक।

अंग्रेजी में कहा है-

१. **'Wisdom into the mind, what health is to the body'**

आरोग्य जैसे शरीर के लिये है, वैसे ही विवेक मन (मस्तिष्क) के लिये है।

२. **'Whilst a man loves lust, he cannot love wisdom.'**

जब तक मनुष्य अपनी वासनाओं को चाहता है तब तक वह विवेक के प्रति प्रीति नहीं रख सकता।

-पूर्व न्यायाधिपति राजस्थान उच्च न्यायालय

संरक्षक-अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

'चंदन' बी-२, रोड़, पावटा, जोधपुर

सामायिक : एक समाधि साधना

डॉ. लक्ष्मीचन्द जैन

- मन, वचन और काया के योग से स्थिर रहना सरलतम रूप में समाधि है। हमारी समस्त साधनाओं का लक्ष्य ही समाधिभाव है।
- मात्र अड़तालीस मिनट की भाव स्थिरता समस्त आत्म सिद्धियों का सूत्रपात है।
- हममें से अनेक अपने जीवन में लम्बे समय से सामायिक-साधना करते आ रहे हैं। सबके अपने-अपने अनुभव हैं, उन्हीं के आधार पर आज तक स्थिरता बनी हुई है, फिर भी समाधि-साधना की खोज जारी है।
- समधि भाव आ भी जाय तो भी साधना की अखण्डता को कायम रखना इसलिए नितान्त आवश्यक है क्योंकि कहीं शिथिलता न आ जाये।
- हे विशाल बुद्धियुक्त सज्जनों! दीर्घ काल तक शुद्ध भाव में स्थिर रहने से आत्मा शाश्वत सुख की अधिकारी बनती है। **-छोटी कसरावद (म.प्र.)**

आओ स्वाध्याय करें

अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद्

द्वारा प्रायोजित त्रैमासिक प्रतियोगिता (११)

अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद् के माध्यम से 'आओ स्वाध्याय करें' त्रैमासिक प्रतियोगिता-परीक्षा का ग्याहरवाँ आयोजन 'जिनवाणी' के अप्रेल-मई-जून २००६ के अंकों के आधार पर किया जा रहा है। इसमें कुल ५० प्रश्न पूछे गए हैं, जिनके उत्तर **श्री गौतम जैन, सचिव- अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद्, १९२ बी, मीटर गेज रेलवे कॉलोनी, बजरिया-३२२००१, सवाईमाधोपुर, फोनं. ०७४६२-२२१८९१** के पते पर **१५ अगस्त २००६** तक मिल जाने चाहिए। श्रेष्ठ उत्तरदाताओं को क्रमशः १००१ रुपये, ५०१ रुपये एवं २५१ रुपये के पुरस्कार से पुरस्कृत किया जाएगा। १०० रुपये के १० प्रोत्साहन पुरस्कार भी दिए जायेंगे। परिणाम की सूचना सितम्बर २००६ के अंक में प्रकाशित की जाएगी। प्रतियोगी अपना पता अवश्य लिखें।

जो प्रतियोगी अपने प्राप्तांक शीघ्र जानना चाहते हों, वे प्रविष्टि के साथ जवाबी पोस्टकार्ड भेज कर परिणाम जान सकते हैं। सभी उत्तरदाताओं से निवेदन है कि वे उत्तर भेजते समय केवल प्रश्न क्रमांक व उत्तर ही भेजें। प्रश्न लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। -सम्पादक

(क) एक शब्द में उत्तर दीजिए-

०१. एक अध्यात्मयोगी जो शरीर, परिजन एवं पुद्गल से आत्मा की भिन्नता का प्रतिपादन करते हैं।

०२. किस राजा ने द्रव्य के प्रभाव से साध्य को प्राप्त कर लिया?

०३. बीस अक्षरों के बजाय पाँच अक्षर ही बोलकर काम चला लेना कौनसा तप है?

०४. अवसर को जानने वाले, अवसर का सदुपयोग करने वाले को शास्त्रकारों ने क्या कहा है?

०५. सेवा में स्व-पर की सरहदें समाप्त होकर कौनसा भाव जाग्रत हो जाता है?

०६. आचार्य ने अनाथी मुनि की कैसी चिकित्सा की थी?

०७. सिर पर चढ़ कर कौन बोल रहा है?

०८. सुप्रणिधान से कौन तिगुनी हो जाती है?

०९. एक अवस्था को त्यागकर दूसरी अवस्था को धारण करना क्या कहलाता है?

१०. जन्म, जरा, मरण को क्या कहा गया है?

(ख) मुझे पहचानिये-

११. मैंने कर्मरोग मिटाने के लिए तप को अमोघ औषधि कहा है।

१२. यदि तीर्थंकर तारते तो मैं भी शीघ्र ही तिर जाता।

१३.मैं हेय, ज्ञेय व उपादेय का ज्ञान कराने वाला हूँ।

१४.बाहर से बढ़े, भीतर से घटे।

१५.मैं सामायिक कर, नवकार स्मरण करते हुए प्रसन्नता से फाँसी के फंदे पर झूल गया।

१६.एकमात्र मैं ही संचित कर्मों का क्षरण करने में समर्थ हूँ।

१७.मुझसे सद्गुणों के विनाश की बाढ़ आ जाती है।

१८.मैं एक ऐसा मीठा जहर हूँ जो खाते वक्त अच्छा लगता हूँ।

१९.मैं हिन्दू धर्म का उद्गम स्थल हूँ।

२०.मैं तो नवजीवन की नवचेतना का नव उत्सव हूँ।

(ग) अंकों में उत्तर दीजिये-

२१.नैनहीन संपत्ति अपने साथ कितने साथियों को लायेगी?

२२.संयम पथ की राहों में कितनी चारित्रात्माओं का नामोल्लेख हुआ है।

२३.भारत के कितने शहरों में जैन शोध संस्थान अवस्थित हैं।

२४.परम्परा के मूलपुरुष श्री कुशलचन्द जी म.सा की कौनसी पुण्यतिथि देवनगर में मनाई गई।

२५.१९ मार्च २००७ को कितने प्रहर का अस्वाध्याय रहेगा?

२६.दशवैकालिक सूत्र की कितनी गाथाओं में 'मन' शब्द प्रयुक्त हुआ है?

२७.मन की गति एक सैकण्ड में लगभग कितने किलोमीटर है?

२८.'जैनी कहाते हैं' में जैनी कहलाने योग्य कितने लक्षण निर्दिष्ट किए गए हैं?

२९.कितने कारणों से विचार संकुचित होते हैं?

३०.कितने लक्षणों पर आस्था से युक्त संकल्प को सम्यग्दर्शन युक्त कहा जा सकता है।

(घ) हाँ या नाँ में उत्तर दीजिए-

३१.वीतराग भी तपस्या करते हैं।

३२.जून के जिनवाणी अंक में अब तक प्रकाशित १५ विशेषांकों का नामोल्लेख हुआ है।

३३.सामायिक, स्वाध्याय, दया, उपवास, पौषध आदि का संबंध सीधा शरीर के साथ है।

३४.मंदबुद्धि व्यक्ति विषय-सेवन में ही जीवन की सार्थकता मान बैठे हैं।

३५.सम्यक् क्रिया का आराधक नव ग्रैवेयक जैसी सुगति का अधिकारी बन जाता है।

(ङ) निम्न उल्लेख कहाँ वर्णित हैं?

३६. जैन गृहस्थ के १६ संस्कारों की विधि।

३७. स्वर्ग की प्राप्ति के लिए अग्निष्टोम यज्ञ करने की प्रेरणा।

३८. जैसे जगत में मेरुपर्वत से ऊँचा और आकाश से विशाल कुछ भी नहीं है, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।

३९. सत्य, दान, क्षमा, शील, मृदुता, तप, दया आदि ब्राह्मण के लक्षण माने गए हैं।

४०. सामायिक करते समय श्रावक को साधु के समान बताया है।

(च) विलोम शब्द लिखिए-

४१. विधायक

४२. पतन

४३. छाया

४४. प्रदीप्त

४५. मुमुक्षुत्व

(छ) किसने कहा/सोचा-

४६. जो वेश को नहीं बदल सकता, वह मन को कैसे बदलेगा?

४७. पत्रकार समाज की आँख और कान होते हैं।

४८. भूत सपना है, भविष्य कल्पना है तो वर्तमान अपना है।

४९. काश वे दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति नहीं होते।

५०. जैन धर्म भारतीय बुद्धिजीविता का एक अभिन्न अंग है।

त्रैमासिक प्रतियोगिता (१०) का शेष परिणाम-

४५ अंक प्राप्त करने वाले प्रतियोगी-प्रकाशचन्द्र पारख-धनारीकलां, किरण गांधी-जोधपुर, प्रीतम कोठारी-पाली, मोनिका संखलेचा-जोधपुर, नीतू ओस्तवाल-अजमेर, जौहरीमल छाजेड़-जोधपुर, आशा जैन-धनारीकलां, आशीष सुराणा-उज्जैन, सोहनलाल गोलेछा-झालावाड़, अशोक कुमार जैन-चेन्नई, रौनक चोरडिया-जोधपुर, कंचन देवेन्द्र जैन-नागौर, साधना जितेन्द्र जैन-नागौर, मुनेन्द्र सुराणा-नागौर, नीतू बैद-चेन्नई, कुसुम सुराणा-उज्जैन, अकलकंवर मोदी-जोधपुर, प्रज्ञा डागा-भोपाल, सुशीला मेहता-जोधपुर, दीप्ति मेहता-जोधपुर, प्रवीण जैन-गोटन, मदनकंवर-आचीणा, अंकित बरडिया-इन्दौर, पुष्पा ताथेड़-धुलिया, ज्योति ताथेड़-धुलिया, मनीष जैन-आचीणा, कंवलराज मेहता-जोधपुर, अनीता लोढ़ा-जोधपुर, ज्योत्सना जैन-अलीगढ़, सुमतिचन्द मेहता-पीपाड़, रेणु जैन-खौह, अणिमा सत्यदास-नागदा, शांतिलाल महात्मा-चित्तौडगढ़, मनीषा जैन-खौह, कल्पेश सालेचा-पादरू, शारदा जैन-सवाईमाधोपुर, पवनदेवी ओस्तवाल-नागपुर, पुष्पा मेहता-पीपाड़, सुनंदा जैन-जामनेर, सौ राज मेहता-जबलपुर, आशा अग्रवाल-जयपुर, प्रीति आर. जैन-जालना, पुष्पा गोलेछा-ब्यावर, मगनलाल जैन-बोलिया, मंजू जैन-सवाईमाधोपुर। (क्रमशः)

शान्त स्वभावी, स्वाध्याय प्रेमी, वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री बाबूलाल जी जैन, गोपालगढ़

शान्त स्वभावी, सेवाभावी, सरलमना, स्वाध्याय प्रेमी, वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री बाबूलाल जी जैन का जन्म दिनांक ८.२.१९४२ को श्री कैलाशप्रसाद जी जैन की धर्मपत्नी श्रीमती असर्फी देवी की रत्न कुक्षि से गोपालगढ़, भरतपुर में हुआ। आपने प्रारम्भिक शिक्षा भरतपुर में ली। हायर सैकण्डरी उत्तीर्ण कर आप राजकीय सेवा से जुड़ गये।

माता-पिता के संस्कार और गुरु भगवन्तों की असीम कृपा से आपमें धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण हुआ, फलस्वरूप आपने सामायिक, प्रतिक्रमण, २५ बोल, ६७ बोल आदि कण्ठस्थ किये। गुरु भगवन्त की प्रेरणा से सन् १९९८ में आप स्वाध्यायी बने, तब से अब तक आप निरन्तर पर्युषण पर्वाधिराज के दिनों में संत-साध्वी विहीन क्षेत्रों में पधारकर जन-जन में धार्मिक प्रचार-प्रसार करते हुए लोगों को धार्मिक क्रिया की ओर जोड़कर जिनवाणी की प्रभावना कर रहे हैं।

आपने उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र, अन्तगडदशांग सूत्र तथा कल्पसूत्र का वाचन किया। भजन और चौबीसियों में भी आपकी विशेष रुचि रही है।

आप प्रतिदिन कम से कम छः सामायिक करते हैं। सेवानिवृत्ति के पश्चात् सामायिक के साथ स्वाध्याय के माध्यम से आप निरन्तर ज्ञानवृद्धि में लगे हुए हैं। खाली समय में आगमों का अध्ययन करते हैं तथा नवीन ज्ञानार्जन हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। समय-समय पर आयोजित स्वाध्याय शिविर में भाग लेकर तथा जैन धर्म की प्रतियोगिता परीक्षा में भाग लेकर आप अपने ज्ञान को और अधिक पुष्ट करने का प्रयास करते हैं।

शान्त-दान्त-गंभीर उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. की प्रेरणा से आपने १२ व्रत तथा मधुरव्याख्यानी विदुषी महासती श्री सौभाग्यवती जी म.सा. की प्रेरणा से आपने आजीवन शीलव्रत अंगीकार किये हैं। रात्रि भोजन त्याग, सम्पूर्ण जमीकन्द का त्याग तथा अधिकतम हरी सब्जियों तथा फलों का भी आप त्याग कर चुके हैं।

पर्वाधिराज पर्युषण में आपने पहरसर, मण्डावर, खौह, कुण्डेरा, शेरपुर,

बाबई, नदबई आदि क्षेत्रों में अपनी सेवाओं द्वारा जिनवाणी की प्रभावना की है। पर्युषण में आप दोनों काल प्रतिक्रमण, प्रार्थना, अन्तगड़ सूत्र का वाचन, प्रवचन, कल्पसूत्र वाचन, चौपाई, विभिन्न प्रतियोगिताएँ, सायं प्रतिक्रमण के पश्चात् धार्मिक चर्चा आदि द्वारा लोगों को जैन धर्म का महत्त्व समझाते हुए धर्म से जोड़ने का कार्य करते हैं।

आप स्थानीय क्षेत्र में भी सामाजिक एवं धार्मिक कार्य में पूर्ण उत्साह एवं रुचि से अपनी सेवाओं द्वारा जन-जन को लाभान्वित करते हैं।

स्वाध्याय-संघ परिवार आपकी सुदीर्घ आयु तथा उज्ज्वल भविष्य की मंगल-कामना करता हुआ जिनेश्वर देव से प्रार्थना करता है कि आप स्वस्थ रहें तथा जिनवाणी की प्रभावना करते रहें। ***-श्रीमती मोहनकौर जैन, सचिव***

चातुर्मास

श्री महेश नाहटा

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की आराधना का नाम है — चातुर्मास
स्व-पर कल्याणक की साधना का नाम है — चातुर्मास
एक ही स्थान पर चार माह के लिए स्थिर होने का नाम है — चातुर्मास
जीवों की रक्षा का अनमोल साधन है — चातुर्मास
भगवान की वाणी श्रवण का नाम है — चातुर्मास
सद्गुरु की शिक्षा से जीवन की दिशा व दशा बदलने का नाम है — चातुर्मास
दुर्गुणों को दूर कर सद्गुणों के विकास का नाम है — चातुर्मास
स्वाध्याय ज्ञान-ध्यान में खो जाने का नाम है — चातुर्मास
आत्म-तत्त्व को पहचानने का नाम है — चातुर्मास
यतना और विवेक रखने का नाम है — चातुर्मास
ज्ञान और क्रिया का संगम है — चातुर्मास
धर्म और समाज में जागृति लाने का नाम है — चातुर्मास
जन-जन को जोड़ने का नाम है — चातुर्मास
वैराग्य में रम जाने का नाम है — चातुर्मास
समय के सुन्दर सदुपयोग का नाम है — चातुर्मास
व्यसनमुक्ति व संस्कार जागरण का नाम है — चातुर्मास
आत्मा से परमात्मा बनने का नाम है — चातुर्मास

-नगरी (छत्तीसगढ़)

कृति की २ प्रतियाँ अपेक्षित हैं

नूतन साहित्य

डॉ. धर्मचन्द जैन

विधिमार्गप्रपाः*-जिनप्रभसूरि विरचित, *अनुवादिका-संशोधिका*-साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी (विधिप्रभा) *प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान*-श्री महावीर स्वामी जैन देरासर ट्रस्ट, ८-विजयवल्लभ चौक, पायधुनी, मुम्बई-४००००३(महा.) फोन नं.०२२-२३४६३६४८ *पृष्ठ ३०+३६२+१३२ बड़ा आकार, मूल्य २५१ रुपये, सन् २००५

श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक की खरतरगच्छ परम्परा में जिनप्रभसूरि चौदहवीं शती के महान् प्रभावक आचार्य हुए थे, जिन्होंने दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुगलक को भी प्रतिबोध दिया था। जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित 'विधिमार्गप्रपा' एक अनूठा ग्रन्थ है, जिसमें श्रावक एवं साधु-जीवन से सम्बद्ध अनेक विधि-विधानों का निरूपण है साथ ही पूजा-प्रतिष्ठाविधि सदृश विधियाँ भी वर्णित हैं। श्वेताम्बर आम्नाय में समस्त विधि-विधानों का यह प्रमुख मार्गदर्शक ग्रन्थ रहा है। ग्रन्थ के नामानुरूप यह विधि-विधानों के मार्ग की प्रपा (प्याऊ) है, जहाँ सबको तृप्ति मिलती है। इस ग्रन्थ में श्रावकधर्म के अन्तर्गत सम्यक्त्व आरोपण विधि, परिग्रह परिमाण विधि, सामायिक आरोपण, ग्रहण और पारणा विधि, उपधानविधि, पौषधविधि, प्रतिक्रमण विधि आदि का उल्लेख है। मुनि के आचार के अन्तर्गत प्रव्रज्या विधि, लोचकरण विधि, तपविधि, भिक्षाटन विधि, उपस्थापना विधि, स्वाध्याय विधि; योगवहन विधि, वाचना विधि, संलेखना विधि आदि के अतिरिक्त वाचनाचार्य, उपाध्याय, आचार्य, प्रवर्तिनी, महत्तरा, गणानुज्ञा आदि पदों की स्थापना विधियों का उल्लेख हुआ है। आध्यात्मिक साधना-विधि में आलोचनाविधि एवं अनशनविधि का उल्लेख है वहीं अन्तिम क्रिया की महाप्रतिष्ठापना विधि (शव विसर्जन विधि) दी गई है। प्रतिष्ठा विधि, मुद्राविधि, तीर्थयात्राविधि, योगिनी-साधना विधि, अंगविज्जासिद्धविधि आदि का भी निरूपण हुआ है।

प्राकृत भाषा में निबद्ध 'विधिमार्गप्रपा' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ होते हुए भी

इसका हिन्दी में अनुवाद नहीं था, जिसकी पूर्ति प्रसिद्ध मूर्धन्य विद्वान् डॉ. सागरमल जी जैन, शाजापुर के मार्गदर्शन में साध्वी श्री शशिप्रभा जी म.सा. की सम्प्रेरणा से साध्वी सौम्यगुणा श्री जी ने कुशलतापूर्वक किया है। इससे यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सबके लिए सुलभ हो गया है। ४१ विधि-विधानों से युक्त ग्रन्थ के अंत में उपयोगी ११ परिशिष्ट दिए गए हैं, जिससे ग्रन्थ की महत्ता बढ़ गई है। साध्वी सौम्यगुणा श्री जी ने 'विधिमार्गप्रपा' के समीक्षात्मक अध्ययन पर राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच्.डी. की उपाधि प्राप्त की है।

यह ग्रन्थ यद्यपि खरतरगच्छ परम्परा से सम्बद्ध है तथापि तपागच्छ आदि अन्य गच्छों के लिए तथा जैन धर्म के विशेष जिज्ञासुओं एवं शोधार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

***प्राकृत साहित्य की रूपरेखा**-डॉ. तारा डागा **प्रकाशक**-(१)प्राकृत भारती अकादमी, १३-ए, मेन मालवीय नगर, जयपुर-३०२०१७, फोन नं. ०१४१-२५२४८२७ (२) श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर-३४४०२५, बालोतरा, जिला-बाड़मेर (राज.), **पृष्ठ १६४, मूल्य** ७५ रुपये, सन् २००६*

प्राकृत भाषा आगमों की भाषा तो है ही, इसमें लोकजीवन का विशाल साहित्य भी उपलब्ध है। श्वेताम्बर आगम अर्द्धमागधी प्राकृत में है तथा दिगम्बर आगम-साहित्य शौरसेनी प्राकृत में है। डॉ. तारा डागा ने प्राकृत के स्वरूप एवं विकास, आगम-परम्परा, अर्द्धमागधी आगमों एवं शौरसेनी आगम-साहित्य का परिचय देने के अनन्तर प्राकृत के प्रमुख शिलालेखों, प्रमुख काव्य-ग्रन्थों, प्रमुख चरितकाव्यों पर भी अध्याय लिखे हैं। उन्होंने नाटक-साहित्य में प्राकृत के प्रयोग, प्राकृत सट्टक, प्राकृत व्याकरण ग्रन्थ, छन्द, अलंकार एवं कोशग्रन्थ का भी विवेचन किया है। प्राकृत साहित्य के संबंध में उपर्युक्त बोध के लिए यद्यपि डॉ. जगदीशचन्द्र जैन की कृति 'प्राकृत साहित्य का इतिहास' तथा डॉ. नेमीचन्द शास्त्री की पुस्तक 'प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पहले से प्रकाशित हैं, किन्तु संक्षेप में बोध हेतु डॉ. तारा डागा की पुस्तक उपयोगी है। इस पुस्तक के कतिपय अध्यायों के लेखन में 'जिनवाणी' के जैनागम साहित्य-विशेषांक २००२ का भी उपयोग किया गया है, जिसका लेखिका ने उल्लेख भी किया है।

***भगवन् करुणासिन्धो...*-पं. हरगोविन्द दास सेठ *विवेचना*-सुरेन्द्र बोथरा *प्रकाशक*-(१)प्राकृत भारती अकादमी, १३-ए, मेन मालवीय नगर, जयपुर-३०२०१७, फोन नं. ०१४१-२५२४८२७ (२) श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर-३४४०२५, बालोतरा, जिला-बाड़मेर (राज.), *पृष्ठ* ४८+८०, *मूल्य* ५५ रुपये सन् २००६ (द्वितीय संस्करण)*

पं. हरगोविन्द सेठ (१८८८ से १९४१ ई.) 'पाइय-सद्द-महण्णवो' नामक प्राकृत शब्दकोश की रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। संस्कृत भाषा में 'भगवन् करुणासिन्धो...' से प्रारम्भ यह स्तुति 'महावीर शतक' के रूप में १०१ श्लोकों में निबद्ध है। शतक भावपूर्ण है तथा भक्त की भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति है। इस शतक का हिन्दी में विवेचन प्राकृत भारती में कार्यरत विद्वान् श्री सुरेन्द्र बोथरा ने अपने पिताजी श्री शुभकरण जी बोथरा से प्रेरणा पाकर किया है। श्लोकों की विवेचना जीवन में प्रेरणा देने वाली है। पुस्तक उपयोगी है, किन्तु मुद्रण में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं।

***प्रश्नोत्तरी*-गणिवर्य श्री युगभूषणविजयजी महाराज *प्रकाशक*-गीतार्थ गंगा, ५-जैन मर्चेन्ट सोसायटी, फतेहपुरा रोड, पालड़ी, अहमदाबाद(गुजरात)७, *पृष्ठ* १३६, *मूल्य* २० रुपये, सन् २००५*

पुस्तक में १७६ प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं।

***पाक्षिक अतिचार*-गणिवर्य श्री अरिहंतसागरजी महाराज *प्रकाशक*-उपर्युक्त (प्रश्नोत्तरी पुस्तक के अनुसार), *पृष्ठ* २४, *मूल्य* १० रुपये, सन् २००५*

इस पुस्तक में प्रतिक्रमण के अतिचारों का उल्लेख है, जो स्थानकवासी परम्परा से मिलता-जुलता है।

जब आत्मा अपने ही स्वरूप में रमण करती है और बाह्य जगत के साथ उसका कोई लगाव नहीं रह जाता है। तब यह आत्मा ध्याता, ध्येय और ध्यान की त्रिपुटी में परिणत हो जाती है, निर्विकल्प समाधि की दशा प्राप्त कर लेती है और उसकी अनन्त शक्तियाँ जागृत हो उठती हैं।

समाचार-संकलन

रत्नसंघ के सन्त-सतियों के चातुर्मास

विक्रम संवत् २०६३, ईस्वी सन् २००६

(१) बंगारपेट(कर्नाटक)

- **आगमज्ञ, प्रवचन-प्रभाकर, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री १००८ श्री हीराचन्द्र जी म.सा.**
- महान् अध्यवसायी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनि जी म.सा.
- सेवाभावी श्रद्धेय श्री नन्दीषेणमुनि जी म.सा.
- तत्त्वचिन्तक श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनि जी म.सा.
- श्रद्धेय श्री योगेशमुनि जी म.सा.
- श्रद्धेय श्री मनीषमुनि जी म.सा.
- श्रद्धेय श्री बलभद्रमुनि जी म.सा.
- श्रद्धेय श्री देवेन्द्रमुनि जी म.सा. ठाणा ८

चातुर्मास स्थल- श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ (स्थानक भवन), एकम्बरम् रोड़, बंगारपेट(कर्नाटक), ''Ekambaram Road, Bangarpet-563114(Karnataka)

सम्पर्क सूत्र- १. श्री नथमल जी सांखला, फोन नं.०८०-५७७६४५९८
२. श्री प्रकाशचन्द जी नाहटा, मोबाइल ०९४४८१-८५२७७
३. श्री दलीचन्द जी नाहटा, मोबाइल ०९४४८६-३५८७८
४. श्री अशोककुमार जी बंट, मोबाइल०९४४९१-५५५१०

पत्राचार का पता- १. श्री सुनील कुमार जी नाहटा, No. 553, Bazaar Street, Bangarpet-563114(Karnataka) Ph. 08153-255379, 255579, Mo. 099453-51611, 094480-03709

आवागमन के साधन- बेंगलोर से बंगारपेट ७० कि.मी. दूरी पर स्थित है। बेंगलोर-चेन्नई रेल मार्ग पर बंगारपेट स्टेशन पर शताब्दी एक्सप्रेस के अलावा सभी गाड़ियों का ठहराव है। प्रातः ६.३०, ६.५०, ८.१०, १०.१५ बजे, मध्याह्न १.००, २.३०, २.४५ बजे, सायं ५.००, ५.३०, ६.१०, ७.३० बजे एवं रात्रि ८.३०, ९.३०, १०.४०, ११.४० बजे बेंगलोर से बंगारपेट के लिए मेल/एक्सप्रेस/सवारी गाड़ियाँ उपलब्ध है। रेलवे स्टेशन से स्थानक ५

मिनट पैदल रास्ते से पहुँचा जा सकता है।

बंगारपेट पधारने वाले श्रीसंघ एवं श्रद्धालुओं द्वारा बेंगलोर में निम्न सम्पर्क-सूत्रों का उपयोग किया जा सकता है-

१. संघप्रमुख श्री चेतनप्रकाश जी डूंगरवाल- फोन नं.०८०-२२२२२४४३(का.) २२२१२३८१(नि.) मोबाइल ०९८४५२-२५३४४
२. सुश्रावक श्री यशवन्त जी सांखला-फोन नं.०८०-२५५४३९३८ मो. ०९८४५०-१९६६९
३. सुश्रावक श्री नवरतनमलजी भंसाली-फोन नं.०८०-२५३६३८५३ मो.०९८४४१-५८९४३
४. सुश्रावक श्री उत्तमचन्द जी भंडारी- मो. ०९८४५०-००२३६
५. अध्यक्ष, श्री जैन रत्न युवक परिषद्, बैंगलोर(हरीश जी सांखला)-मो.०९३४१८-४५०००, ०९३४१२-५१४०७

(२) पीपाड़ शहर (जिला-जोधपुर)राज.

- 卐 **आत्मार्थी, शान्त-दान्त-गंभीर, प्रबल पुरुषार्थी परमश्रद्धेय उपाध्याय पं. रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा.**
- 卐 मधुरव्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतममुनि जी म.सा.
- 卐 तपस्वी श्रद्धेय श्री प्रकाशमुनि जी म.सा.
- 卐 श्रद्धेय श्री यशवन्तमुनि जी म.सा.
- 卐 नवदीक्षित श्री लोकचन्द्रमुनि जी म.सा. ठाणा ५

चातुर्मास स्थल- श्री ओसवाल लोडे साजन संघ सभा भवन (कोट), पो. पीपाड़ शहर-३४२६०१, जिला-जोधपुर (राज.)

सम्पर्क सूत्र- १. श्री सुमतिचन्द जी मेहता, मैसर्स गजराज नेमीचन्द जैन, सदर बाजार, पीपाड़ शहर, जिला-जोधपुर (राज.) फोन नं. ०२९३०-२३३०६९(दु.) २३३८४२(घर) मो. ९४१४४-६२७२९

२. श्री हस्तीमल जी बोहरा, दुधिया जाव, आदर्श नगर, पो. पीपाड़ शहर, जिला-जोधपुर (राज.) फोन नं. ०२९३०-२३३६६१

आवागमन के साधन- जोधपुर जिलान्तर्गत पीपाड़शहर का जोधपुर, मेड़ता, अजमेर, जयपुर, बिलाड़ा, पाली, ब्यावर जैसे समीपवर्ती शहरों से सड़क मार्ग का जुड़ाव है। जोधपुर से पीपाड़ हर आधे घंटे के अन्तराल पर रोडवेज एवं प्राइवेट बसें चलती रहती है। भोपालगढ़, बिलाड़ा, आसोप, गोटन, मेड़ता, बोरुन्दा, पीपाड़ रोड़, कुचेरा, मुण्डवा, डेगाना आदि क्षेत्रों से प्राइवेट बसें उपलब्ध हैं। समीपवर्ती रेलवे स्टेशन पीपाड़ रोड़ एवं उम्मेद स्टेशन हैं जहाँ से पीपाड़ के लिए नियमित अन्तराल पर बसें उपलब्ध हैं।

(३) घोड़ों का चौक-जोधपुर (राज.)

- 卐 **साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा.**
- 卐 तत्त्वचिन्तिका व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवर जी म.सा.
- 卐 महासती श्री चन्द्रकला जी म.सा.
- 卐 महासती श्री दर्शनलता जी म.सा.
- 卐 महासती श्री शशिकला जी म.सा.
- 卐 महासती श्री उषा जी म.सा.
- 卐 नवदीक्षिता महासती श्री सुव्रतप्रभा जी म.सा. ठाणा ७

चातुर्मास स्थल- जैन स्थानक, घोड़ों का चौक, जोधपुर-३४२००६(राज.)

सम्पर्क सूत्र- १. श्री अमरचन्द जी मेहता, श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, घोड़ों का चौक, जोधपुर-३४२००१(राज.), फोन नं. ०२९१-२७२२१३६, २७४२१३८(नि.), २६४१४४५(का.), टेलीफैक्स- २६३६७६३

२. श्री नवरतन जी डागा, ८९८-ए, डागा टॉवर, डी रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर(राज.), फोन नं.०२९१-२६५४६७२, २६५४४२७, मो. ९८२८०-३२२१५

आवागमन के साधन- जोधपुर राजस्थान का दूसरा सबसे बड़ा शहर है जो रेल, सड़क एवं हवाई मार्ग से देशभर से जुड़ा हुआ है। राजस्थान के सभी जिला मुख्यालयों के साथ समीपवर्ती प्रान्त गुजरात, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, दिल्ली से सड़क मार्ग से जुड़ा होने के कारण समीपवर्ती प्रान्तों की सीधी बस सेवाएँ उपलब्ध हैं। रेलवे से उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम से सीधी ट्रेनें उपलब्ध हैं।

(४) जावला(जिला-नागौर)राज.

- 卐 **सेवाभावी महासती श्री संतोषकंवर जी म.सा.**
- 卐 महासती श्री मनोहरकंवर जी म.सा.
- 卐 महासती श्री कौशल्या जी म.सा.
- 卐 महासती श्री पुनीतप्रभा जी म.सा ठाणा ४

चातुर्मास स्थल- जैन स्थानक, पो. जावला, जिला-नागौर (राज.)

सम्पर्क सूत्र- १. श्री दिनेश कुमार जी कोठारी, पो. जावला-३४१५३४, वाया-डेगाना, जिला-नागौर (राज.) फोन नं. ०१५८७-२७६०३७

२. श्री माणकचन्द जी कोचेटा, पो. जावला-३४१५३४, वाया-डेगाना, जिला-नागौर (राज.) फोन नं. ०१५८७-२७६०३३

आवागमन के साधन- जावला नागौर जिलान्तर्गत कस्बा है, जहाँ अजमेर, डेगाना, मेड़ता, किशनगढ़, नागौर, जोधपुर से बसों का आवागमन नियमित अन्तराल पर चलता रहता है। समीपवर्ती रेलवे स्टेशन डेगाना है। डेगाना से जावला १८ कि.मी. दूरी पर स्थित है, जहाँ हर समय बस की सुविधा उपलब्ध है।

(५) पीपाड़ शहर(जिला-जोधपुर)राज.

- 卐 **शान्तस्वभावी तपस्विनी महासती श्री शांतिकंवर जी म.सा.**
- 卐 व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा.
- 卐 महासती श्री सुमतिप्रभा जी म.सा.
- 卐 महासती श्री मुदितप्रभा जी म.सा. ठाणा ४

चातुर्मास स्थल- श्रीमती शरदचन्द्रिका मोफतराज मुणोत स्वाध्याय भवन, पीपाड़ शहर, जिला- जोधपुर (राज.)

सम्पर्क सूत्र- क्र.सं. २ के अनुसार

आवागमन के साधन- क्र.सं. २ के अनुसार

(६) जबलपुर (मध्यप्रदेश)

- 卐 **व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवर जी म.सा.**
- 卐 महासती श्री सुमनलता जी म.सा.
- 卐 महासती श्री पुष्पलता जी म.सा.
- 卐 महासती श्री स्नेहलता जी म.सा.
- 卐 महासती श्री मंजूलता जी म.सा.
- 卐 महासती श्री चैतन्यप्रभा जी म.सा.
- 卐 महासती श्री भक्तिप्रभा जी म.सा. ठाणा ७

चातुर्मास स्थल- जैन स्थानक भवन (सेठ निहालचन्द कॉम्पलेक्स), पेट्रोल पम्प के पास, गोरखपुर मेन रोड़, जबलपुर-४८२००१ (म.प्र.) फोन नं. ०७६१-४०१७०३३

सम्पर्क सूत्र- १. श्री सम्पतलाल जी बागमार, मै.सम्पत साड़ी एम्पोरियम, गोरखपुर बाजार, मेन रोड, जबलपुर (म.प्र.), फोन नं.०७६१-२४००५०३(का.) २४१२०८३(नि.), मो. ०९४२५१-५६४५७

२. श्री मदनलाल जी बागमार, रेमण्ड शॉप, ज्योति सिनेमा के पास, नौंदरापुल, जबलपुर (म.प्र.), फोन नं. ०७६१-२६२५१६२(का.) २४०८३६३, ४०१६४९१(नि.), मो. ०९४२५३-२४६२४, ०९४२५१-५२६६८

३. श्री प्रकाशचन्द जी नाहटा 'सी.ए.' मै. दीपचन्द प्रकाशचन्द नाहटा, सेठ निहालचन्द कॉम्पलेक्स, गोरखपुर बाजार, जबलपुर (म.प्र.), फोन नं: ०७६१-२४०१५९२(का.)२४०१५९३(नि.) मो.०९३००१-०००४७

आवागमन के साधन- जबलपुर शहर पश्चिमी-मध्य रेलवे का जोन मुख्यालय है। मुम्बई-हावड़ा वाया इलाहाबाद रुट की सभी ट्रेनें जबलपुर होकर निकलती हैं। जबलपुर से चेन्नई, दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, बैंगलोर, कोटा, अहमदाबाद, पूना, नागपुर शहरों के लिए सीधी रेलवे सेवाएँ हैं। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं महाराष्ट्र के प्रमुख शहरों से जबलपुर के लिए सीधी बसें उपलब्ध हैं।

(७) वेल्लूर (तमिलनाडू)

卐 **विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवर जी म.सा.**

卐 व्याख्यात्री महासती श्री सरलेशप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री विनयप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री इन्दिराप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री रक्षिता जी म.सा.

卐 महासती श्री सुयशप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री प्रभावती जी म.सा.ठाणा ७

चातुर्मास स्थल- जैन प्रेयर हॉल, नं. १, कालीमन कॉयल स्ट्रीट, वैल्लूर-६३२००४ (तमिलनाडू)

सम्पर्क सूत्र- १. श्री जे. पुखराज जी सम्पतराज जी छोरलिया, ३१-गणेश रेडियो हाऊस, सारथी मेन्शन, वैल्लूर-६३२००४ (तमिलनाडू), फोन नं.०४१६-२२२५७८०, २२२३८८२, मो. ०९३४५३-००१४६

२. श्री वी. सुमतिलाल जी भटेवड़ा , प्रकाश ज्वैलरी हॉल, ४२४-मेन बाजार, वेल्लूर-६३२००४ (तमि.), फोन नं. ०४१६-२२२३४०९, २२२२३४१

आवागमन के साधन- चेन्नई से बेंगलोर मार्ग पर काठपाड़ी उतरकर वैल्लूर पहुँचा जा सकता है। काठपाड़ी से वैल्लूर ७ किमी. दूर है। जहाँ से टेम्पो, टैक्सी, बस की सुविधा है। समीपवर्ती सभी क्षेत्रों से वैल्लूर बस से भी पहुँचा जा सकता है।

(८) कानपुर(उ.प्र.)

卐 **विदुषी महासती श्री सौभाग्यवती जी म.सा.**

卐 महासती श्री सुश्रीप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री शारदा जी म.सा.

卐 महासती श्री लीलाकंवर जी म.सा.ठाणा ४

चातुर्मास स्थल- श्री जैन श्वे. स्थानकवासी संघ, ४६/७३, रूक्मणी जैन भवन, खोया बाजार, लोहाई हटिया, कानपुर-२०८००१ (उ.प्र.)

सम्पर्क सूत्र- १.श्री दौलतराम जी जैन, ४७/७७, ए-धनकुट्टी, कानपुर (उ.प्र.) फोन नं.०५१२-२३१७१३४(का.)२६०६२२४(नि.), मो.-०९३३६२-७३३०१

२.श्री गौतमचन्द जी जैन, १०८/८८, दुर्गादेवी मन्दिर रोड़, कानपुर (उ.प्र.), फोन नं. ०५१२-२५४४४५५, ३२४०९६०(का.) २५२५८२२(नि.) मोबाइल-०९४१५१-३२८४५

आवागमन के साधन- औद्योगिक शहर कानपुर दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता एवं दक्षिण क्षेत्रों के रेलमार्ग से जुड़ा शहर है, जहाँ सभी ट्रेनों का ठहराव है। रेलवे स्टेशन से जैन स्थानक साइकिल रिक्शा से सिटी साइड (घंटाघर) हर समय साधन सुलभ है। जैन स्थानक भवन पंजाब नेशनल बैंक हाल्सी रोड़ के ठीक सामने वाली गली में है। कानपुर जयपुर, इन्दौर, भोपाल, ग्वालियर, आगरा, दिल्ली आदि शहरों से सड़क मार्ग से जुड़ा शहर है।

(९) आवासन मण्डल-सवाईमाधोपुर (राज.)

卐 **व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा.**

卐 महासती श्री विमलावती जी म.सा.

卐 महासती श्री रुचिता जी म.सा.

卐 महासती श्री जागृतिप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री वृद्धिप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री सिद्धिप्रभा जी म.सा.ठाणा ६

चातुर्मास स्थल- स्वाध्याय भवन, ३/४८, आवासन मण्डल, सवाईमाधोपुर(राज.)

सम्पर्क सूत्र- १. श्री श्यामसुन्दर जी जैन 'चकेरी वाले', १/२७६, आवासन मण्डल, सवाईमाधोपुर-३२२०२१(राज.),फोन नं.०७४६२-२३४४०६

२. श्री लल्लूलाल जी जैन, १/१८७ आवासन मण्डल, सवाईमाधोपुर-३२२०२१(राज.),फोन नं.०७४६२-२३४६८०

आवागमन के साधन- दिल्ली-मुम्बई मुख्य रेलमार्ग पर सवाईमाधोपुर रेलवे स्टेशन है, जहाँ सभी गाड़ियों का ठहराव है। रेलवे स्टेशन से आवासन मण्डल पहुँचने के लिए बस-टैक्सी उपलब्ध रहती है। सवाईमाधोपुर जिला मुख्यालय सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। जहाँ राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम एवं प्राइवेट बसों का नियमित अन्तराल से आवागमन होता है।

(१०) कोटा (राज.)

卐 **व्याख्यात्री महासती श्री शांतिप्रभा जी म.सा.**

卐 महासती श्री समर्पिता जी म.सा.

卐 महासती श्री विवेकप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री परागप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री ऋद्धिप्रभा जी म.सा. ठाणा ५

चातुर्मास स्थल- श्री वर्द्ध. स्थानकवासी जैन श्री संघ (स्थानक भवन), रामपुरा बाजार, कोतवाली के सामने वाली गली, कोटा (राज.)

सम्पर्क सूत्र- १.श्री कुशलराज जी मेहता, जैन स्थानक की गली, रामपुरा, कोटा (राज.)फोन नं.०७४४-२३८०६६२

२.श्री संतोषकुमार जी बोथरा, वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार, ३९४, शॉपिंग सेन्टर, कोटा (राज.)फोन नं. ०७४४-२३६०९५०, २३६२२९६

३. श्री बुद्धिप्रकाश जी जैन, वर्द्धमान नमकीन्स, गुमानपुरा, मेन रोड़, कोटा (राज.)फोन नं.०७४४-२३९१७५९,२३८१०१९(का.),२३८२८३२(नि.) मो. ९४१४१-७७१३९

आवागमन के साधन- दिल्ली-मुम्बई ट्रेक पर कोटा रेलवे स्टेशन है, जहाँ रेल एवं सड़क मार्ग से आवागमन के साधन उपलब्ध हैं। रेलवे स्टेशन से स्थानक ६ कि.मी. दूर है जबकि रोड़वेज बस स्टेण्ड से १ कि.मी. दूर है।

(११) काचीगुड़ा-हैदराबाद(आन्ध्रप्रदेश)

卐 **व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा.**

卐 महासती श्री चारित्रलता जी म.सा.

卐 महासती श्री भाग्यप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री प्रतिष्ठाप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री निष्ठाप्रभा जी म.सा. ठाणा ५

चातुर्मास स्थल- श्री श्वे.स्थानकवासी जैन श्रावक संघ (श्री पूनमचन्द जी गाँधी जैन स्थानक भवन) काचीगुड़ा रेलवे स्टेशन के सामने, ३-४-१०२२, काचीगुड़ा, हैदराबाद-५०००२७(आ.प्र.) फोन न. ०४०-२७५६४८२०

सम्पर्क सूत्र- १. श्री किशोर कुमार जी छाजेड़, राजश्री बैंगल्स, ४-४-१३८/३०, श्री गोपाल मार्केट, सुल्तान पेट, हैदराबाद-५०००९५, फोन नं. ०४०-२४७५१९०८(का.), २४७५१७४४(नि.), मो. ०९४४०४-७२७८३

२. केप्टन श्री बी.एल. जैन, श्री श्वे.स्था. जैन श्रावक संघ, ३-४-१०२२, काचीगुड़ा, हैदराबाद-५०००२७, फोन नं. ०४०-५५६११२५१(का.) ३०६०१४४०(नि.), मो. ०९३९१०-१५३५५

आवागमन के साधन- भारत के सभी मार्गों से हैदराबाद रेल, सड़क व हवाई मार्ग से जुड़ा शहर है। काचीगुड़ा रेलवे स्टेशन के सामने स्थानक भवन स्थित है।

(१२) पाली-मारवाड़(राज.)

卐 **व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवती जी म.सा.**

卐 महासती श्री श्रुतिप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री मतिप्रभा जी म.सा. ठाणा ३

चातुर्मास स्थल- सामायिक-स्वाध्याय भवन,सुराणा मार्केट, पाली-मारवाड़-३०६४०१(राज.), फोन नं. ०२९३२-२५००२१

सम्पर्क सूत्र- १.श्री ताराचन्द जी सिंघवी, ७-गांधी कटला, पाली-३०६४०१(राज.), फोन नं. ०२९३२-२२१२७१(का.), २२२००५(नि.)

२.श्री सोहनलाल जी नाहर, ७-महावीर गली, गुन्देचियों का बास, पाली-३०६४०१(राज.)फोन नं.०२९३२-२२७६३३(नि.) मो.९४१४१-२१३५८

आवागमन के साधन- पाली का सामायिक-स्वाध्याय भवन शहर के मुख्य बाजार सुराणा मार्केट में स्थित है। टैक्सी करके आने वाले तो सीधे बाजार पहुँच सकते हैं, किन्तु निजी वाहन लेकर आने वालों को भीड़भाड़ के रास्ते में तकलीफ हो सकती है और वाहन पार्किंग सुविधा नहीं है। निजी वाहन वाले पुराने बस स्टेण्ड से धानमण्डी होकर पुलिस चौकी, जूनी कचहरी के रास्ते सामायिक-स्वाध्याय भवन पहुँच सकते हैं जहाँ पार्किंग का स्थान सुलभ है। सुराणा मार्केट स्थानक रेलवे स्टेशन एवं नये बस स्टेण्ड से करीब ढाई कि.मी. है।

(१३) गदग(कर्नाटक)

卐 **व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभा जी म.सा.**

卐 महासती श्री उदितप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री संयमप्रभा जी म.सा. ठाणा ३

चातुर्मास स्थल- श्री जैन स्थानक भवन, महावीर रोड़, गदग-५८२१०१(कर्नाटक)

सम्पर्क सूत्र- १. श्री दीपचन्दजी बागमार, जी.एम.बाघमार एण्ड सन्स मोहिनी गुलाब बिल्डिंग, पो.बा.नं. ३४, स्टेशन रोड़, गदग-५८२१०१ (कर्नाटक), फोन नं. ०८३७२-२३८२१२(का.) २३७५४०(नि.), मो.०९३१४०-८३७७०

२. श्री बाबूलालजी लुंकड़,फोन ०८३७२-३२५५२९,मो.९३४३५-४३६७५

३. श्री महावीरचन्द जी बेताला, अशोका ड्रेसेज, स्टेशन रोड़, गदग (कर्नाटक) फोन नं.०८३७२-२३६७२७(का.) २३५१०२(नि.)

आवागमन के साधन- गदग शहर बेंगलोर, कोल्हापुर, मिरज, हुबली, होसपेट, बल्लारी, हैदराबाद, तिरुपति, चेन्नई ब्रोडगेज लाइन पर है जहाँ से सीधी रेल सेवाएँ उपलब्ध हैं। हुबली से ५६ कि.मी., होसपेट से ७५ कि.मी. पर स्थित है। सोलापुर से गदग के लिए मीटर गेज की रेलगाड़ी चलती है। राज्य एवं अन्तर्राज्य बसें नियमित अन्तराल पर उपलब्ध हैं।

(१४)सहकार नगर-नासिक (महा.)

卐 **सेवाभावी महासती श्री विमलेशप्रभा जी म.सा.**

卐 महासती श्री यशप्रभा जी म.सा.

卐 महासती श्री पद्मप्रभा जी म.सा. ठाणा ३

चातुर्मास स्थल- जैन स्थानक, गंजमाल, सहकार नगर, नासिक (महा.)

सम्पर्क सूत्र- १.श्री मोहनलाल जी कुम्भट, सर्वोदय नगर, स्थानक के सामने, नासिक (महा.), फोन नं. ०२५३-२३०७६०१

२. श्री चन्द्रकान्त जी पारख, पवन बंगला, सहकार नगर, नासिक (महा.)

आवागमन के साधन- नासिक जिला मुख्यालय है, जहाँ रेल एवं सड़क मार्ग से आवागमन के साधन सुलभ हैं।

(१५) भोपालगढ़ (जिला-जोधपुर) राज.

卐 **महासती श्री विनीतप्रभा जी म.सा.**

卐 महासती श्री समता जी म.सा.

卐 महासती श्री निरंजना जी म.सा. ठाणा ३

चातुर्मास स्थल- पुराना स्थानक, भोपालगढ़-३४२६०३, जिला-जोधपुर(राज.)

सम्पर्क सूत्र- १.श्री सुगनचन्द जी कांकरिया, गोदारा चौक, भोपालगढ़-३४२६०३, जिला-जोधपुर(राज.) फोन नं. ०२९२०-२२२२९३(का.)२२३११७(ऑ.)

२.श्री भंवरलाल जी पींचा, गजानंदजी के मन्दिर के पास, भोपालगढ़-३४२६०३, जिला-जोधपुर(राज.), फोन नं. ०२९२०-२२३११८

३.श्री मनोज जी बोथरा, नए स्थानक के पास, भोपालगढ़-३४२६०३, जिला-जोधपुर(राज.) फोन नं. ०२९२०-२२२२६५

आवागमन के साधन- जोधपुर जिलान्तर्गत क्रियोद्धारक भूमि भोपालगढ़ पहुँचने के लिए जोधपुर से सीधी बस सेवा प्रातः से सायं तक सुलभ है। जोधपुर के अतिरिक्त पीपाड़, बिलाड़ा, आसोप, कुचेरा, मेड़ता, गोटन आदि सभी समीपवर्ती क्षेत्रों के लिए नियमित अन्तराल से प्राइवेट बसें सुलभ हैं।

धार्मिक प्रचार-प्रसार यात्रा सम्पन्न

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर द्वारा समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों में धार्मिक प्रचार-प्रसार कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। दिनांक २१ जून से २८ जून २००६ तक विदर्भ क्षेत्र के ३२ से भी अधिक ग्राम/शहरों में प्रचार कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में स्वाध्याय संघ, जोधपुर की सचिव श्रीमती मोहनकौर जी जैन-जोधपुर, वरिष्ठ सुश्रावक श्री महेन्द्र जी कटारिया-नागपुर, वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री दिनेश जी नाहटा-नगरी, श्री रमेश जी कोचर-नागपुर एवं समन्वय प्रभारी श्री प्रकाश जी सालेचा-जोधपुर ने अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। प्रचार-प्रसार के दौरान 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं' प्रतियोगिता का प्रचार किया गया। यात्रा के दौरान २०० ग्रन्थ एवं ३०० प्रश्नपुस्तिकाओं का विक्रय हुआ। पर्युषण पर्वाराधना २००६ हेतु ७ माँगे भी प्राप्त हुई। आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड की परीक्षाओं की प्रेरणा की गई जिसके फलस्वरूप ५ नये केन्द्र खोले गये। क्षेत्रों में सामायिक-स्वाध्याय करने, स्वाध्यायी आमंत्रित करने एवं स्वाध्यायी बनने हेतु प्रेरणा की गई।

महावीर पुरस्कार एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाडिया पुरस्कार

जयपुर- प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान, श्री महावीरजी के वर्ष २००६ के **महावीर पुरस्कार** के लिए जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबंध की चार प्रतियाँ दिनांक ३० सितम्बर २००६ तक आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार ५००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। ३१ दिसम्बर २००२ के पश्चात् प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती है।

यह सूचित करते हुए हर्ष है कि वर्ष २००५ का महावीर पुरस्कार डॉ. श्रीमती ज्योति जैन एवं श्री कपूरचन्द जी जैन, खतौली को उनकी कृति 'स्वतंत्रता संग्राम में जैन' पर दिनांक १४ अप्रेल २००६ को श्री महावीरजी में महावीर जयन्ती के वार्षिक मेले के अवसर पर प्रदान किया गया। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन, नसियाँ भट्टारकजी, सवाईरामसिंह रोड़, जयपुर-४ से पत्रव्यवहार करें। *-डॉ. कमलचन्द सोगाणी, संयोजक*

स्वयम्भू पुरस्कार

जयपुर- दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष २००६ के स्वयंभू पुरस्कार के लिए अपभ्रंश से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियाँ ३० सितम्बर २००६ तक आमन्त्रित हैं। इस पुरस्कार में २१०००/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। ३१ दिसम्बर २००२ से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियाँ सम्मिलित नहीं की जायेंगी। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाईरामसिंह रोड़, जयपुर-४ से पत्रव्यवहार करें। *- डॉ. कमलचन्द सोगाणी, संयोजक*

बधाई/चुनाव

जयपुर- सुश्री आयुषी जैन सुपुत्र श्री सतीशकुमार जी, सुपौत्री श्री कस्तूरचन्द जी जैन (मूल निवासी खेरली)मानसरोवर, जयपुर ने राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर से सैकण्डरी की परीक्षा में ९१.८३ अंक प्राप्त कर संघ-समाज को गौरवान्वित किया है। दादाजी के द्वारा प्रदत्त धार्मिक संस्कारों के कारण आयुषी प्रतिदिन माला फेरने के पश्चात् ही आगे का कार्य प्रारम्भ करती है।

चेन्नई- श्री एस.एस. जैन महिला विद्या संघ के चुनावों में श्री जबरचन्द जी बोकड़िया-अध्यक्ष, श्री मदनलाल जी वैद-उपाध्यक्ष, श्री केशरीचन्द जी सेठिया-जनरल सेक्रेट्री, श्री रामशिवराज जी खाबिया-सहमंत्री और श्री श्रेणिकराज जी बोहरा-कोषाध्यक्ष चुने गए। *-केशरीचन्द सेठिया*

संक्षिप्त समाचार

गंगापुर सिटी- बालक-बालिकाओं में धार्मिक ज्ञानाभ्यास बढ़े इसी लक्ष्य से गंगापुर सिटी में श्री जैन श्वे. स्था. पल्लीवाल संघ के तत्त्वावधान में ९ जून से १३ जून तक धार्मिक शिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें १०१ शिविरार्थियों ने भाग लिया। सवाईमाधोपुर के स्वाध्यायी श्री लल्लूलाल जी जैन व श्री इन्द्रकुमार जी जैन के अलावा स्थानीय अध्यापक माया देवी, सुधा एवं प्रियंका ने अध्यापन कार्य किया। संघ ने बच्चों को उत्साहवर्द्धन के लिए पुरस्कार प्रदान किया। *-रेवतीप्रसाद जैन*

देई- बून्दी जिलान्तर्गत देई ग्राम के श्रावक-श्राविकाएँ ज्ञान-क्रिया सम्पन्न संत-सतीवृन्द की सेवा-भक्ति के सुयोग का लाभ उठाने में तत्पर रहते हैं। व्याख्यात्री

महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा ६ का देई पदार्पण हुआ तब गाँव के जैन-जैनेतर जन समुदाय ने अच्छा लाभ लिया। महासती मण्डल की प्रेरणा से सामूहिक सामायिकें, सामूहिक दया जैसे कार्यक्रमों के साथ प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताओं के आयोजन उत्साहपूर्वक हुए। एक-एक व्यक्ति ने पाँच-सामायिकें की, पच्चीस के लगभग सामूहिक दयाव्रत हुए। मध्याह्न में अन्त्याक्षरी कार्यक्रम चला। महासती मण्डल के विराजने के कारण बहिनों में ज्ञान-ध्यान सीखने का अच्छा उत्साह रहा।

-ताराचन्द जैन-मंत्री

बोंदवड़- श्री ओसवाल जैन बोर्डिंग, बोंदवड़, जिला-जलगाँव में होनहार जैन छात्रों के आवास-भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था है। इच्छुक छात्र श्री कांतिलाल जी बरडिया अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द जी कोठारी, सचिव, फोन नं. ०२५८२-२७५३७६, २७५७९९ से सम्पर्क करें।

भड़गाँव- आगमज्ञ, प्रवचन-प्रभाकर, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक, परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री १००८ श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का १६वाँ आचार्य पद चादर महोत्सव ज्येष्ठ कृष्णा ५ गुरुवार १८ मई को भक्तिभावना से मनाया गया। प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता कार्यक्रम के साथ त्याग-तप के प्रति सभी लोगों का अच्छा रुझान रहा।

-सौ. कमला सिंघवी

राजनाँद- श्री देव आनन्द जैन शिक्षण संघ, जी.ई. रोड़, राजनादगाँव (छत्तीसगढ़) में छात्रावास के लिए गृहपति/उपगृहपति की आवश्यकता है। स्नातक एवं धार्मिक ज्ञान वाले व्यक्ति को प्राथमिकता, आकर्षक वेतन। *-गौतम पारख, सचिव, फोन नं. ०७७४४-४०७४१८, ९४२५२-४७३०४*

चौथ का बरवाड़ा- ३० मई को यहाँ 'अनेकान्तवाद' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन स्थानक भवन में किया गया। वरिष्ठ स्वाध्यायी श्री लल्लूलाल जी जैन, श्री गौतमचन्द जी जैन, श्री हरकचन्द जी जैन आदि ने विषय पर विचार प्रस्तुत किए।

श्रद्धाञ्जलि

अजमेर- रत्नवंश की वयोवृद्ध श्राविका श्रीमती उगमबाई धर्मसहायिका स्व. श्री इन्दरचन्द जी कटारिया का ९० वर्ष की आयु में हृदयगति रुक जाने से २५ मई २००६ को स्वर्गवास हो गया। आपके ५० वर्षों से रात्रि चौविहार त्याग एवं ब्रह्मचर्य का नियम था। आप ५ सामायिक कम से कम प्रतिदिन करती थीं। आपकी आचार्यप्रवर हस्तीमल जी म.सा., आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा., उपाध्याय पं. रत्न श्री

मानचन्द्र जी म.सा. के प्रति अगाध भक्ति थी। आपने १५-१५ दिन की तपस्याएँ की एवं कई अठाईयाँ, तेले, ग्यारह के तप भी किए। गत ५० वर्षों से ओली की तपस्या करती थी। चातुर्मास में सतियों के स्थानक में ही रात्रि विश्राम करती थी। परन्तु गत ३-४ वर्षों में अपने दो पुत्रों के अचानक वियोग से अत्यन्त ठेस पहुँचने से दिनोंदिन आपके स्वास्थ्य में गिरावट आती रही। त्याग-तप के प्रति उनकी रुचि एवं भावना प्रेरणादायी रही। *-अशोक कटारिया*

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जिनवाणी तथा अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

साधना से नवनिर्माण

श्री त्रिलोकचन्द जैन

साधना में सहजता, सरलता और स्पष्टता अवश्य होनी चाहिये। सहज साधना में जो स्फूर्ति और उत्साह रहता है, वह ऊपर से थोपी गई साधना में नहीं आ सकता है। साधक के मानस में न किसी प्रकार का प्रलोभन होना चाहिये और न भय। राष्ट्र संत आचार्य विनोबा भावे ने कहा- "बच्चों को डण्डा दिखाकर आज्ञा-पालन की भावना पैदा करना निश्चय ही गलत है। यदि समझाने-बुझाने का माध्यम प्रेम हो तो उनके जीवन का विकास सही दिशा में होगा।"

मनुष्य की साधना का लक्ष्य वैभव विलास नहीं, स्वर्ग नहीं, केवल आत्मा की विशुद्धि होना चाहिये। जो प्रलोभन से किया जाता है वह भी धर्म नहीं और जो भय से किया जाता है, वह भी धर्म नहीं बन सकता है, क्योंकि भय और प्रलोभनों के आधार पर चलाया गया धर्म ज्यादा समय टिकता नहीं है और अन्तर में तो कदापि नहीं बैठता है।

साधना मनुष्य को नया नहीं बनाती है। वह आत्मा का अभिनव निर्माण नहीं करती है। उसका कार्य जीवन की पूर्णता पर जो आवरण आ गया है, उसे दूर करके उसके पूर्ण रूप को प्रकट करना है। अतः जो क्रिया मानव को पूर्णता की ओर ले जाती है, अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है, वही साधना है।

साधना का प्रारम्भ अन्तर्जगत् से होता है और फिर धीरे-धीरे उसका बहिर्जगत् में समागम होता है, यही सच्ची साधना है। साधना में न जीवन का व्यामोह होना चाहिये और न मृत्यु का भय। निर्भयता साधना की प्राण शक्ति है।

-द्वारा सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर (राज.)

साभार-प्राप्ति-स्वीकार

५००/- रुपये जिनवाणी पत्रिका की आजीवन-सदस्यता हेतु प्रत्येक

१०४०७ डॉ. तिलोकचन्द जी सूरजमल जी खिंवसरा, मालेगाँव-नाशिक(महा.)
१०४०८ श्री मनोज जी बाफना, रिंग रोड़, सूरत (गुजरात)
१०४०९ श्री दिनेशचन्द जी बापूलाल जी भण्डारी, रामपुरिया, झाबुआ (म.प्र.)
१०४१० श्री आनन्द जी चौपड़ा, मालवीय नगर, जयपुर (राज.)
१०४११ श्री मनमोहनचन्द जी सांखला, हैदराबाद (आ.प्र.)
१०४१२ श्री आशीषकुमार जी जैन, बजरिया, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४१३ श्री अरूणकुमार जी हिम्मतसिंह जी, बोम्बे मार्केट, सूरत (गुजरात)
१०४१४ Shri M. Manoharlal Ji Gandhi, Ernavoor, Chennai (T.N.)
१०४१५ श्री कैलाशचन्द जी लोढ़ा, जौहरी बाजार, जयपुर (राज.)
१०४१६ श्री दौलतराम जी जैन, किदवई नगर, कानपुर (उ.प्र.)
१०४१७ श्री निर्मल कुमार जी चतुर्वेदी, मुडौली, मैनपुरी (उ.प्र.)
१०४१८ श्री अशोक कुमार जी सचिन कुमार जी जैन, गाँधीनगर, आगरा (उ.प्र.)
१०४१९ श्री नरेन्द्रकुमार जी जैन, गाँधी नगर, आगरा (उ.प्र.)
१०४२० श्री सुरेन्द्र जी गुलेछा, हाऊसिंग बोर्ड, जोधपुर (राज.)
१०४२१ श्री राजेन्द्र जी मुणोत, आदर्शनगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़)
१०४२२ श्री अरूण कुमार जी छाजेड़, भोईपारा, दुर्ग (छत्तीसगढ़)
१०४२३ श्री अतुल जी नवलखा, सिविल लाईन्स, जयपुर (राज.)
१०४२४ Lalita Jewellery, Manali, Chennai (T.N.)
१०४२६ Smt. Sunita Ji Singhvi, Coimbature (T.N.)
१०४२७ श्री पुखराज जी मुणोत, चौपासनी हाऊसिंग बोर्ड, जोधपुर (राज.)
१०४२८ श्री पुखराज जी उत्तमचन्द जी गोलेछा, सदर बाजार, रायपुर (छत्तीसगढ़)
१०४२९ श्री चन्दनमल जी लुंकड़, रायपुर (छत्तीसगढ़)
१०४३० श्री माँगीलाल जी चौपडा, राजनांदगाँव (छत्तीसगढ़)
१०४३१ श्री रावलचन्द जी कोचर, छुईखदान, राजनांदगाँव (छत्तीसगढ़)
१०४३२ श्री यशवन्तसिंह जी कोठीफोड़ा, नीमचसिटी (म.प्र.)
१०४३३ श्री सरदारसिंह जी कोचेटा, नीमचसिटी (म.प्र.)
१०४३४ श्री अंकुर जी जैन, जीन्द (हरियाणा)
१०४३५ श्री कमल जी जैन, पिल्लूखेड़ा मण्डी, जीन्द (हरियाणा)
१०४३६ डॉ. विकास जी जैन, पीतमपुरा, दिल्ली
१०४३७ श्री आयुष जी जैन, वर्तक नगर, थाना (महा.)
१०४३९ श्री संदीप कुमार जी सुराणा, बेगूँ, चित्तौडगढ़ (राज.)
१०४४५ श्रीमती निलिमा जी नाहर, दिल्ली
१०४५६ श्री अशोक कुमार जी जैन, आगरा (उ.प्र.)
१०४५९ हीना महेन्द्र जी जैन, केलशी, रत्नागिरी (महा.)

१०४६४ राजेश जी कोठारी, जयपुर (राज.)
१०४९४ सुश्री सरोज दीपचन्द जी जैन, अलवर (राज.)

अर्द्धमूल्य योजना के अन्तर्गत आजीवन सदस्यता

(सुश्राविका श्रीमती कपूरीदेवी, अलीगढ़-टोंक की स्मृति में)

१०४२५ श्री विजय जी जैन, जवाहरनगर, जयपुर (राज.)
१०४३८ श्री प्रदीप जी जैन, रसीदपुर, दौसा (राज.)
१०४४० श्रीमती ज्ञानदेवी जी ललवाणी, इन्दौर (म.प्र.)
१०४४१ Lalita Devi Ji Dugar, Gopur, Sonitpur (Assam)
१०४४२ श्री चन्द्रप्रकाश जी जैन, विश्वकर्मा नगर-प्रथम, जयपुर (राज.)
१०४४३ श्री पुष्पेन्द्र कुमार जी जैन, इन्दिरा बाजार, जयपुर(राज.)
१०४४४ श्री अभय कुमार जी जैन, भवानीमण्डी, झालावाड़ (राज.)
१०४४६ श्री विजय कुमार जी जैन, इन्दौर (म.प्र.)
१०४४७ श्री सुरेशचन्द जी जैन, कोटा (राज.)
१०४४८ श्री आनन्द कुमार जी बाफना, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४४९ डॉ. विजयकुमार जी संचेती, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४५० श्री महेश कुमार जी बाफना, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४५१ श्री दिलीप कुमार जी फोफलिया, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४५२ सौ. विद्या जी टाटिया, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४५३ श्री दिनेश जी चोरडिया, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४५४ श्री अभयकुमार जी सुराणा, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४५५ श्री दीपकुमार जी बाघमार, निफाड़, नाशिक (महा.)
१०४५७ श्री शांतिलाल जी महात्मा, चित्तौड़गढ़ (राज.)
१०४५८ श्री पूनमचन्द जी राजूलाल जी जैन, सहादा (महा.)
१०४६० श्री क्षितिज रमेश जी वेदमुथा, उल्लासनगर, थाणे (महा.)
१०४६१ श्री राजकुमार जी पालावत, जयपुर (राज.)
१०४६२ श्री विजयकुमार जी जैन, हिण्डौन सिटी (राज.)
१०४६३ श्री विनोद कुमार जी जैन, जयपुर (राज.)
१०४६५ श्री अनोखीलाल जी मोगरा, मोरवनबांध, नीमच (म.प्र.)
१०४६६ श्री अजयकुमार जी फाफलिया, जयपुर (राज.)
१०४६७ श्रीमती सृष्टि जी गोलेछा, जबलपुर (म.प्र.)
१०४६८ निष्ठा जी कटारिया, रतलाम (म.प्र.)
१०४६९ श्री दीपक कुमार जी जैन, अलीगढ़ (टोंक) राज.
१०४७० श्री सुनील रामविलास जी जैन, अलीगढ़ (टोंक) राज.
१०४७१ श्री भैरूलाल जी जैन, अलीगढ़ (टोंक) राज.
१०४७२ श्री बाबूलाल जी जैन, आदर्श नगर, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४७३ श्री नरेन्द्र कुमार जी जैन, नई दिल्ली
१०४७४ श्री पारसचन्द जी जैन, इन्दौर (म.प्र.)

१०४७५ श्री मोहनलाल जी दिनेश कुमार जी जैन, चौथ का बरवाड़ा (राज.)
१०४७६ श्री बाबूलाल जी जैन, अलीगढ़ (टोंक) राज.
१०४७७ श्री संदीप कुमार जी जैन, इन्दौर (म.प्र.)
१०४७८ श्री कैलाशचन्द जी जैन, पचाला, टोंक (राज.)
१०४७९ श्री ज्ञानचन्द जी जैन, आवासन मण्डल, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४८० सुश्री खुशबू जी कोठारी, भेस्तान (सूरत)
१०४८१ श्री राजेन्द्र जी सिंघवी, जोधपुर (राज.)
१०४८२ डॉ. छैलसिंह जी राठौड़, जोधपुर (राज.)
१०४८३ श्री हेमचन्द जी जैन, बारां (राज.)
१०४८४ श्री धन्नालाल जी पंकज कुमार जी जैन, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४८५ श्री पदमचन्द जी पल्लवकुमार जी जैन, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४८६ श्री जिनेन्द्रकुमार शैलेष कुमार जी जैन श्रीमाल, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४८७ श्री लड्डूलाल जी सुरेन्द्र जी जैन 'चकेरी वाले', सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४८८ श्री सुशीलकुमार जी जैन, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४८९ श्री सार्थक प्रवीण जी महाजन, बजरिया, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४९० श्री राकेश जी मीणा, बजरिया, सवाईमाधोपुर (राज.)
१०४९१ श्रीमती सुनिता जी बाफना, चेन्नई (तमि.)
१०४९२ श्री महेन्द्रकुमार जी जैन, अलीगढ़ (टोंक) राज.
१०४९३ श्री सुनित कुमार जी जैन, अलीगढ़ (टोंक) राज.
१०४९५ श्रीमती प्रकाशवती जी ओसवाल, उदयपुर (राज.)
१०४९६ श्री सुरेन्द्र जी जैन, आगरा (उ.प्र.)

जिनवाणी हेतु साभार

१०००/- जिनवाणी हेतु सप्रेम अर्थ सहयोग हस्ते श्रीमती मंजू जी कोठारी, जयपुर।

५०१/- श्री बजरंगलालजी जैन सर्राफ, सवाईमाधोपुर, अपने सुपौत्र चि. मनीष (सी.ए.) सुपुत्र श्री सुबाहु कुमार जी जैन का शुभ विवाह सौ.कां. मीनू जी जैन सुपुत्री श्री धर्मचन्द जी जैन (पादौली वाले), जयपुर के संग दिनांक १७.५.२००६ को सम्पन्न होने की खुशी में।

५०१/- श्री कमलचन्द जी घोड़ावत, दिल्ली, सुश्रावक श्री रूपचन्द जी घोड़ावत सुपुत्र स्व. श्री पन्नालाल जी का ८२ वर्ष की आयु में दिनांक १८.०५.२००६ को देहावसान होने पर उनकी पुण्यस्मृति में भेंट।

५०१/- शांति जी मेहता, जोधपुर, स्व. श्री गौतमचन्द जी मेहता की दि. ३.७.०६ को सातवीं पुण्यतिथि पर भेंट।

५००/- श्री नरेन्द्र जी मंजू जी मेहता, जयपुर की ओर से सप्रेम भेंट।

५००/- सौ. कां. सुप्रिया (सुपुत्री श्री रतनराज जी चौधरी) संग चि. निर्मल कुमार जी (सुपुत्र श्री मदनलाल जी नवलखा) द्वारा सप्रेम भेंट।

५००/- श्री देवीचन्द जी, दिलरूपचन्द जी, लखपतचन्द जी, महावीरचन्द जी भंडारी एवं श्रीमती पूनम जी मेहता, श्रीमती सुशीला जी छाजेड़, जोधपुर, पूज्य माताजी श्रीमती इन्द्रकंवर जी धर्मपत्नी स्व. श्री होशियारचन्द जी भण्डारी का दिनांक ३.६.०६ को

देहावसान होने पर उनकी पुण्यस्मृति में।

४००/- श्री प्रेमराज जी, राजेन्द्र कुमार जी बेताला, इन्दौर, अपने सुपौत्र चि. हरीश सुपुत्र श्री राजेन्द्र जी इन्दु जी बेताला का शुभ विवाह दिनांक १.५.०६ को होने की खुशी में।

३०१/- श्री मनोहरमल जी गांग, जोधपुर, अपने सुपुत्र श्री राजेन्द्र जी गांग एवं पुत्रवधू श्रीमती सरिता जी गांग की शादी की २५वीं वर्षगाँठ एवं सुपौत्र राहत गांग के बी.कॉम.फाईनल ऑनर्स में उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में।

२५१/- श्री भंवरलाल जी रावलचन्द जी गोगड़, आगोलाई, सौ. कां. अल्का का ८ जून को मंगल परिणय होने की खुशी में।

२५०/- श्री चन्दनमल जी ढढ्ढा, बीकानेर, अपनी धर्मपत्नी श्रीमती मैनादेवी जी के चौथे वर्षीतप के पारणे की खुशी में।

जीवदया हेतु साभार

२२००/- श्री निहाल एवं सुश्री निधि, सातारा, अपने संचित कोष की राशि जीवदया में भेंट।

१५००/- श्री देवीचन्द जी, दिलरूपचन्द जी, लखपतचन्द जी, महावीरचन्द जी भंडारी एवं श्रीमती पूनम जी मेहता, श्रीमती सुशीला जी छाजेड़, जोधपुर, पूज्य माताजी श्रीमती इन्द्रकंवर जी धर्मपत्नी स्व. श्री होशियारचन्द जी भण्डारी के दिनांक ३.६.०६ को देहावसान होने पर उनकी पुण्यस्मृति में।

५०१/- श्री बजरंगलालजी जैन सर्राफ, सवाईमाधोपुर, अपने सुपौत्र चि. मनीष(सी.ए.) सुपुत्र श्री सुबाहु कुमार जी जैन का शुभ विवाह सौ.कां. मीनू जी जैन सुपुत्री श्री धर्मचन्द जी जैन (पाटौली वाले), जयपुर के संग दिनांक १७.५.२००६ को सम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम भेंट।

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर को प्राप्त साभार

५०१/- श्री बिरधीचन्द जी राजेन्द्रकुमार जी जैन, आदर्शनगर, सवाईमाधोपुर, अपने सुपुत्र श्री राकेश का शुभविवाह रेणु सुपुत्री श्री महावीरप्रसाद जी जैन, अलीगढ़(टोंक) के साथ २० जून २००६ को सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम भेंट।

५००/- श्री पुखराज जी मुणोत, श्रीमती पदमा जी मुणोत, जोधपुर, उपाध्यायप्रवर के मुखारविन्द से आजीवन शीलव्रत ग्रहण करने के उपलक्ष्य में सप्रेम भेंट।

२५१/- श्री हरकचन्द जी जैन, अलीगढ़, टोंक (राज.), अपने सुपुत्र श्री पवनकुमार जी जैन का शुभ विवाह १० जून २००६ को सानन्द सम्पन्न होने की खुशी में सप्रेम भेंट।

आगामी पर्व

श्रावण कृष्णा ८	मंगलवार, १८.०७.२००६	अष्टमी
श्रावण कृष्णा १४	सोमवार, २४.०७.२००६	चतुर्दशी, पक्खी
श्रावण कृष्णा ३०	मंगलवार, २५.०७.२००६	पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. की ८०वीं पुण्यतिथि
श्रावण शुक्ला ८	बुधवार, ०२.०८.२००६	अष्टमी
श्रावण शुक्ला १४	मंगलवार, ०८.०८.२००६	चतुर्दशी, पक्खी

आचार्य हस्ती जन्म-शताब्दी-वर्ष २०११ के उपलक्ष्य में
गजेन्द्र निधि के सान्निध्य में अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद् द्वारा

आचार्य हस्ती मेधावी युवारत्न छात्रवृत्ति योजना

सामायिक एवं स्वाध्याय के प्रबल प्रेरक, इतिहास मार्तण्ड, युगमनीषी आचार्य श्री १००८ श्री हस्तीमल जी म.सा. के वर्ष २०११ को शताब्दी वर्ष को उत्कृष्ट रूप से मनाने एवं युवारत्न बन्धुओं के शैक्षिक व चारित्रिक उन्नयन हेतु अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद् की पंचवर्षीय मेधावी छात्रवृत्ति योजनान्तर्गत वर्ष २००६ में ९६, २००७ में ९७, २००८ में ९८, २००९ में ९९ तथा वर्ष २०१० में १०० मेधावी छात्रों को प्रतिवर्ष १००० रुपये की राशि नियमानुसार ११ माह प्रदान की जाएगी।

नियमावली

१. आवेदक को प्रतिदिन १ नवकार मंत्र की माला जपने का संकल्प करना होगा।
२. आवेदक सदाचारी हो एवं उसे सप्त कुव्यसन का त्याग करना होगा।
३. आवेदक एक महीने में ५ सामायिक करने का संकल्प लेकर करने वाला हो।
४. आवेदक को अ.भा. श्री जैन रत्न युवक परिषद्/स्वाध्याय संघ, जोधपुर द्वारा आयोजित केन्द्रीय शिविर/क्षेत्रीय शिविर में वर्ष में एक बार भाग लेना अनिवार्य होगा।

योजना की उपादेयता- कोई भी रत्नबन्धु धनाभाव अथवा साधनाभाव से उच्च शिक्षा से वंचित न हो, उनके शैक्षणिक उन्नयन, चारित्र निर्माण एवं चहुँमुखी विकास व प्रतिभाशाली युवाओं की खोज की दृष्टि से यह योजना इस वर्ष जुलाई २००६ से आरम्भ की गई है। पांच वर्षों में ५०० छात्र न केवल संघ व समाज को अच्छे प्रशास्निक अधिकारी, डॉक्टर व प्रोफेशनल उपलब्ध हो सकेंगे बल्कि संघ के प्रति संवेदनशील बनकर समाज को विकास के पथ पर ले जाने में समर्थ हो सकेंगे।

योग्यता- (अ) आवेदक की आयु १५ से अधिक एवं ३० वर्ष से कम होनी चाहिए। (ब) आवेदक द्वारा व्यावहारिक शिक्षण परीक्षा में प्राप्त ६० प्रतिशत से अधिक हो। (स) आवेदक रत्नसंघ परिवार का सदस्य होना चाहिए। (द) आवेदक अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड की प्रतिवर्ष होने वाली जनवरी व जुलाई माह की परीक्षा में से किसी एक परीक्षा को ६० प्रतिशत से अधिक अंकों से उत्तीर्ण किया हुआ होना चाहिए। प्रारम्भिक वर्ष में उत्तीर्ण करना होगा।

आवेदनपत्र- छात्र, छात्राएँ अपने आवेदन पत्र अपने क्षेत्र अथवा नजदीकी श्री जैन रत्न युवक परिषद् की शाखा से अथवा प्रधान कार्यालय घोड़ों का चौक, जोधपुर से प्राप्त कर सकते हैं तथा पूर्ण भरा हुआ आवेदन पत्र चयन समिति के संयोजक **Sh. Budhmal Bohra, Flat No. 211, Akash Ganga Apartment No. 19, Flowers Road, Kilpauk, Chennai-10, Ph. 044-26428868, Mb. 094442-35065** के पते पर प्रेषित करें।

आचार्य हस्ती जीवन-दर्शन स्वाध्याय प्रतियोगिता

युगद्रष्टा-युगमनीषी अध्यात्मयोगी महापुरुष आचार्यप्रवर पूज्य श्री १००८
श्री हस्तीमल जी म.सा. के जीवन-चरित्र

'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं'

पर आधारित खुली पुस्तक प्रतियोगिता में भाग लीजिए

प्रथम पुरस्कार- १ लाख रुपये

अन्य विविध पुरस्कार- द्वितीय-३१,०००/-, तृतीय-२१,०००/-, चतुर्थ-१५,०००/-, पंचम-११,०००/-, षष्ठ-७,०००/-, सप्तम-५,०००/-अष्टम-३,०००/, नवम-२,०००/-, दशम-१०० प्रतियोगियों में प्रत्येक को १,०००/-

शीघ्र प्रतियोगी प्रोत्साहन पुरस्कार रुपये ५०/-प्रत्येक

सौजन्य :

श्रीमती शरद चन्द्रिका मुणोत की स्मृति में श्री मोफतराज मुणोत परिवार, मुम्बई

प्रतियोगिता की उपयोगिता-

अपने जीवन का निर्माण, आत्मशक्ति एवं आत्मविश्वास में अभिवृद्धि, आदर्श साधु-जीवन का बोध, जीवन की वैयक्तिक-पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान, शान्ति एवं आनन्द का अनुभव।

प्रश्न-पुस्तिका वितरण की अन्तिम तिथि	- ६ सितम्बर २००६
शीघ्र प्रतियोगियों हेतु अन्तिम तिथि	- ५ नवम्बर २००६
उत्तरपुस्तिका जमा कराने की अन्तिम तिथि	- २ जनवरी २००७
परिणाम घोषणा	- २९ अप्रेल २००७

प्रतियोगिता हेतु ९५० पृष्ठ का विशाल ग्रन्थ 'नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं २५०/- के स्थान पर मात्र १००/- में तथा प्रश्न पुस्तिका एवं उत्तरपुस्तिका-३०/- में उपलब्ध।

प्रश्नपुस्तिका में लगभग ६०० प्रश्न हैं। प्रश्नपुस्तिका दो भागों में विभक्त है। प्रथम खण्ड, पंचम खण्ड एवं आवरण पृष्ठ आदि के प्रश्न प्रथम भाग में तथा द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड के प्रश्न द्वितीय भाग में हैं।

डाक अथवा कोरियर से मंगवाने पर-

ग्रन्थ-१००/-+ डाक व्यय ६०/-= कुल १६०/-

प्रश्न पुस्तिका ३०/- + डाक व्यय १०/- = कुल ४०/-

ग्रन्थ एवं प्रश्न-पुस्तिका मंगवाने का पता- अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, घोड़ों का चौक, जोधपुर-३४२००१ (राज.), फोन नं. ०२९१-२६३६७६३, २६२४८९१, २६४१४४५, फैक्स-२६३६७६३

पर्युषण पर्वाराधना हेतु स्वाध्यायी आमन्त्रित कीजिए

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर विगत ६२ से भी अधिक वर्षों से सन्त-सतियों के चातुर्मासों से वंचित गाँव/शहरों में 'पर्वाधिराज पर्युषण पर्व' के पावन अवसर पर धर्माराधन हेतु योग्य, अनुभवी एवं विद्वान् स्वाध्यायियों को बाहर क्षेत्र में भेजकर जिनशासन एवं समाज की महती सेवा करता आ रहा है। इस वर्ष भी उन क्षेत्रों में जहाँ जैन सन्त-सतियों के चातुर्मास नहीं हैं, स्वाध्यायी बन्धुओं को भेजने की व्यवस्था है। इस वर्ष **पर्युषण पर्व 21 अगस्त से 28 अगस्त 2006 तक रहेंगे।** अतः देश-विदेश के इच्छुक संघ के अध्यक्ष/मंत्री निम्नांकित बिन्दुओं की जानकारी के साथ अपना आवेदन पत्र दिनांक 15 जुलाई 2006 तक इस कार्यालय को अवश्य प्रेषित करने का श्रम करावें। पहले प्राप्त आवेदन पत्रों को प्राथमिकता दी जायेगी।

1. गांव/शहरका नाम..............जिला.............प्रान्त................................
2. श्री संघ का नाम व पूरा पता...
3. संघाध्यक्ष का नाम व पता...
4. संघ मंत्री का नाम व पता...
5. संबंधित जगह पहुंचने के विभिन्न साधन..
6. समस्त जैन घरों की संख्या...
7. क्या आपके यहाँ धार्मिक पाठशाला चलती है?...
8. क्या आपके यहाँ स्वाध्याय का कार्यक्रम नियमित चलता है?..........................
9. पर्युषण सेवा संबंधी आवश्यक सुझाव...
10. अन्य विशेष विवरण...

आवेदन करने का पता-संयोजक/सचिव, श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, प्रधान कार्यालय-घोड़ों का चौक, जोधपुर- 342001 (राज.) फोन नं. 2624891, फैक्स-2636763, मोबाइल-94141-26279

***विशेष*-दक्षिण भारत के संघ अपनी मांग श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ शाखा चेन्नई २४/२५,Basin Water Works Street,Sowcarpet, Chennai-600079 के पते पर भी भेज सकते हैं। सम्पर्क सूत्र- दुलीचन्द बी. बोहरा, फोन नं. २५२९५१४३ (स्वाध्याय संघ), २६४२३०३६, २६४११०१५**

स्वाध्यायियों के लिये आवश्यक सूचना

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर के समस्त स्वाध्यायी बन्धुओं से निवेदन है कि आप पर्युषण पर्व में अवश्य पधारकर अपनी अमूल्य सेवायें संघ को प्रदान करावें। बाहर गाँव पधारने से आपकी धर्म-साधना तो सुचारु रूप से होगी ही, अन्य भाई-बहिनों की साधना में भी आप निमित्त बन सकेंगे। आप अपनी पर्युषण स्वीकृति स्वाध्याय संघ कार्यालय, जोधपुर- के पते पर अवश्य भिजवाने का श्रम करावें।

'समता' मोक्ष का साधन है तो उसका उलटा 'तामस' नरक का द्वार है। - आचार्य श्री हस्ती

पारसमल सुरेशचन्द कोठारी

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

प्रतिष्ठान

KOTHARI FINANCERS

27, CHANDRAPPAN STREET
CHENNAI-600079(T.N.)
PH.# 25258436, 25298130

Branches:

Bhagawan Motors, Chennai-53, Ph.# 26251960
Bhagawan Cars, Chennai-53, Ph.# 26243455/66
Balaji Motors, Chennai-50, Ph.# 26247077
Padmavati Motors, Jafar Kan Peth, Chennai, Ph.# 24854526

JAI GURU HASTI

JAI GURU HEERAMAN

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

Live & Let Live

Prithvi Exchange

A 100% Money Changer

A DIVISION OF PRITHVI SOFTECH LIMITED

REGD. OFFICE : 33, Montieth Road, Egmore, Channai-600008

CHENNAI	:	**044-28553185, 52145478**
BANGALORE	:	**080-22103267, 22103268**
HYDERABAD	:	**040-23414333, 23414777**
GOA	:	**0832-2420675, 2231190**

www.prithvifx.com

P. DELICHAND KAVAD

SURESH KAVAD
NAVARATHAN KAVAD
RAVINDRA KAVAD
ASHOK KAVAD

158, Trunk Road, Poonamallee, Chennai-600 056
Phone No.: 044-2627 3165, 2627 4165

Jai Guru Hasti ! Jai Mahaveer ! Jai Guru Heera Maan !

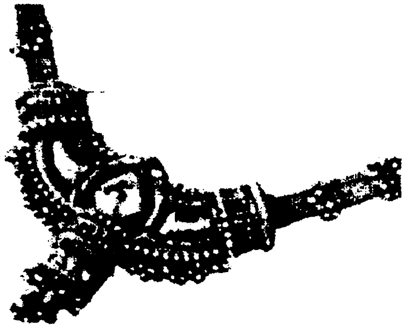

Best Compliments from

GURU HASTI GOLD PALACE

(Govt. Authorised Jewellers) (916.KDM)

22 Ct. Gold! 24 Ct. Trust!

No.4, Car Street,
Poonamallee, Chennai - 600 056.
Phone : 26272609, 55666555.

गुरु हस्ती के दो फरमान।
सामायिक स्वाध्याय महान॥

Guru Hasti Bankers :

P. MANGILAL HARISH KUMAR KAVAD

No.5, Car Street,
Poonamallee, Chennai - 600 056.
Phone : 26272906, 55689588.

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

जीवन को बनाने या बिगाड़ने का सारा दायित्व चरित्र पर ही निर्भर है।

—आचार्य श्री हस्ती

With Best Compliments From :

BRIGHT STAR DIAMOND CO.,LTD.

Diamond & Precious Stones

Ghisalal Gyanchand Prakashchand Bamb

410 The Executive House, 12th Floor, Suite 160-161, Suriwongse Road, BANGKOK 10500, Thailand G.P.O. Box No. 2088	Tel Fax Res Mobile	: : : :	237-8051, 237-8052 234-7648 (662) 237-6110 437-0910 01-6285733

Gurudev

SIL

SURANA

INDUSTRIES LIMITED

Manufacturers & Exporters of

Symbolises the Aspiration of Discerning Steel Buyers !

Premium Quality Steels, viz.,
HSD / CTD Bars, MS Rounds
Structurals Like Flats, Channels
Angles and Squares

Always Use SURANA STEELS to Highlight your House/Industry

Regd. Cum Corporate Head Office

29, Whites Road, II Floor Royapettah, Chennai 600 014.
Grams : **GURUHASTI**
Phone : 28525127 (3 Lines) Fax : 044 28521143
E-mail : suranast@vsnl.com
Website : www.suranaind.com

Works

F-67, 68 & 69 SIPCOT Industrial Complex
Gummidipoondi 601 201, Tiruvallur Dist. Tamilnadu
Phone : 954119 222881 Telefax : 954119 222880

Sales Yard

30, G.N.T. Road, Madhavaram,
Chennai 600 110
Phone : 25375531/32/33 Fax : 044 25375400

Jai Guru Hasti Jai Guru Heera Jai Guru Man

विश्व को आज शस्त्रधारी सैनिकों की नहीं अपितु शास्त्रधारी सैनिकों की आवश्यकता है।

आचार्य श्री हस्ती

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

With Best Compliment From :

NARENDRA HIRAWAT

Flat No. 1, Building No. 2
Navjeevan Society,
Senapati Bapat Marg,
Matunga (West), Mumbai-400016

Trin-Trin

Matunga Office	: 022-56669707, 24370713
Opera House Office	: 022-30024281
Mobile	: 98210-40899

जय गुरु हस्ती जय गुरु हीरा जय गुरु मान

जो संघ में भक्ति रखता है और शासन की उन्नति करता है,
वह प्रभावक श्रावक है।

आचार्य श्री हस्तीमलजी.म.सा.

With Best Compliments From :

MJ

MAHENDRA JEWELLERS

No. 1000-1001.
Thiruvottiyur High Road
Kaladipet, Chennai-600 019

Phone : (O) 044-25991313, 25992300, 25992400
Fax : 044-25994466
Phone : (R) 044-25993671, 25993101, 25995588

आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-018/2006-08

Presenting
Premium properties by Kalpataru

KALPATARU ROYALE

Near Cine Planet, Off Sion Circle,
Sion

KALPATARU ESTATE

Opp. Fantasyland,
Andheri (E)

SIDDHACHAL

Pokhran Road No.2,
Thane (W)

Other Projects :

Kalpataru Habitat, **Parel** • Kalpataru Gardens, **Kandivli (E)**
Tarangan, **Thane (W)** • Kamdhenu, **Mulund (E)**
Kalpataru Regency II, **Pune**

KALPA-TARU

111, Maker Chambers IV, Nariman Point, Mumbai - 400 021. India
Tel.: 022-2282 2888, 2281 7171 • Fax: 022-2204 1548, 2288 4778
Email : sales@kalpataru.com • Website : www.kalpataru.com

स्वामी-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के लिये मुद्रक संजय मित्तल द्वारा दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस,
एम.एस.बी. का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशक प्रेमचन्द जैन,
बापू बाजार, जयपुर से प्रकाशित। सम्पादक डॉ. धर्मचन्द जैन।